दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९२ तंत्री जगजीवन बाउचंद दोशी वर्ष २२ अंक नं० ७

महावीर का संदेश

स्वसन्मुख बनो....

आत्मशक्ति को संभालो...

आत्मिक वीरता प्रगट करो...

स्वाश्रय के बल से मोक्ष प्राप्त करो...

इसी मार्ग से हमने मोक्ष प्राप्त किया है, और तुम्हारे लिए भी यही मार्ग है।

—यह है भगवान महावीर का संदेश

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

नवम्बर १९६६] वार्षिक मूल्य २) (२५९) एक अंक २५ पैसा [आश्विन सं० २०२३

विषय-सूची

अपने तत्त्व से परिपूर्ण-पर से शून्य (कविता)
भगवान महावीर
मंगल प्रवचन
क्षणिक जीवन
मंगल प्रभात की मंगल वाणी
श्री समयसार स्तुति (कविता)
सर्वज्ञ वीतराग कथित पदार्थ विज्ञान
भेदज्ञान द्वारा उपशम की प्राप्ति
धन संचय
धर्मात्मा की सच्ची संपदा
चैतन्य की प्रभुता का प्रवाह
मूढ़त्व का स्वभाव (कवित्त)
श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित योगसार के मूल प्राकृत गाथा का अर्थ
विश्व प्रेम की दृष्टि में
परमात्म भावना
परम वैराग्यरूपी मार्ग
उत्तम सुझाव
अचिंत्य चैतन्य रत्न
आध्यात्मिक पद
विविध प्रकार के पुष्प
समाचार संग्रह

आत्मधर्म के ग्राहकों से निवेदन

आत्मधर्म के नय ग्राहकों से जो वर्ष शुरु होने के पश्चात् बने हैं निवेदन है कि उनको अंक नं० ३-४-५ कम पड़ जाने की वजह से नहीं भेज सके हैं। इनके अलावा सभी अंक भेज दिये गये हैं, या भेजे जा रहे हैं। —व्यवस्थापक

आत्मधर्म

आजीवन सभ्य योजना

आत्मधर्म मासिक पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र ज्यादा से ज्यादा विकसित बने और उनके स्थायी ग्राहकों को हरसाल वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो, संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे। अत: ऐसा निर्णय किया गया है कि- १०१) रुपये लेकर 'आजीवन सभ्य' योजना चालू की जाये, एवं उन्हें 'आत्मधर्म' हरसाल बिना वार्षिक शुल्क भेजा जाये। अत: जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सहयोग प्रदान करें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये चालू की गई है।

पत्र व्यवहार का पता—
मैनेजर दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

भूल सुधार

गतांक नं० ६ में पृष्ठ २७२ पर 'जयपुर से शिष्ट मंडल सोनगढ़' इस शीर्षक से सामचार छपा है, उसमें उद्घाटन तिथि भूल से फाल्गुन सुदी २ ता० १३-४-६७ छपी है, उसकी जगह फाल्गुन सुदी २ ता० १३-३-६७ पाठकगण सुधार कर पढ़ें। —प्रकाशक

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला)

नवम्बर : १९६६ ☆ वर्ष २२वाँ, आश्विन वीर नि०सं० २४९२ ☆ अंक : ७

अपने तत्त्व से परिपूर्ण-पर से शून्य

अरे मन कर ले आतम ध्यान ॥टेक॥

कोइ नहीं अपना इस जग में,
क्यों होता हैरान... अरे मन! ॥१॥

जासे पावे सुख अनूपम,
होवे गुण अमलान... अरे मन! ॥२॥

निज में निज को देख देख मन,
होवे केवलज्ञान... अरे मन! ॥३॥

अपना लोक आपमें राजत,
अविनाशी सुखदान... अरे मन! ॥४॥

सुखसागर नित बहे आपमें,
कर मज्जन रजहान... अरे मन! ॥५॥

('जैन प्रचारक' में से साभार)

भगवान महावीर

दीपावली..... मंगल दीपावली.....

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का प्रातःकाल.....

सारा देश आज अपार आनंदपूर्वक यह दीपावली मना रहा है..... काहे का है यह मंगल दीपोत्सव ?

पावापुरी का पवित्र धाम आज हजारों दीपों की जगमगाहट से शोभायमान है। महावीर भगवान के चरणों में बैठकर भक्तजन उनके मोक्षगमन का स्मरण कर रहे हैं और उस पवित्र पद की भावना भा रहे हैं। अहा, भगवान आज संसार बंधन से छूटकर अभूतपूर्व सिद्धपद को प्राप्त हुए। इस समय वे सिद्धालय में विराजमान हैं। पावापुरी में जलमंदिर के ऊपर लोकाग्र में भगवान सिद्धपद में विराजमान हैं।

कैसा है सिद्धपद ? संतों के हृदय में अंकित उस सिद्धपद का वर्णन करते हुए श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि:—

विनकर्म, परम, विशुद्ध जन्म, जरा, मरण से हीन है।
ज्ञानादि चार स्वभावमय अक्षय अछेद, अछीन है॥१७७॥
निर्बाध अनुपम अरु अतीन्द्रिय, पुण्य-पाप विहीन है।
निश्चल, निरालंबन, अमर पुनरागमन से हीन है॥१७८॥

मात्र सिद्धदशा में ही नहीं, परंतु उससे पूर्व संसार अवस्था में भी जीवों में ऐसा स्वभाव है... वह दर्शाते हुए कहते हैं कि—

हैं सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो हैं अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं॥४७॥
विनदेह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

पावापुरी भगवान महावीर

महावीर भगवान ने आज के दिन ऐसा महिमावंत सिद्धपद प्राप्त किया। वे महावीर भगवान कैसे थे और किसप्रकार उस महान सिद्धपद को प्राप्त किया ? कि जिसके आनंद का उत्सव सारा देश दीपक के प्रकाश द्वारा आज भी मना रहा है।

हम सबकी भाँति वे महावीर भगवान भी एक आत्मा हैं। अपनी ही भाँति पहले वह आत्मा भी संसार में था। अरे, वह होनहार तीर्थंकर समान आत्मा भी जब तक आत्मज्ञान न करे, तब तक अनेक भवों में संसार भ्रमण करता है। इसप्रकार भवचक्र में भटकते-भटकते वह जीव एक बार विदेहक्षेत्र में पुण्डरीकिणी नगरी के मधुवन में पुरुखा नामक भील राजा हुआ; एक बार वह सागरसेन नामक मुनिराज को देखकर पहले तो उन्हें मारने के लिये तैयार हो गया, लेकिन बाद में उन्हें वन-देवता समझकर नमस्कार किया और उनके शांत वचनों से प्रभावित होकर मांसादि के त्याग का व्रत ग्रहण किया। व्रत के प्रभाव से वह प्रथम स्वर्ग में देव हुआ और पश्चात् वहाँ से अयोध्या नगरी में भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीची हुआ... चौबीसवें—अंतिम तीर्थंकर का जीव प्रथम तीर्थंकर का पौत्र हुआ। उस भव में अपने दादा के साथ देखा देखी दीक्षा तो ली, परंतु वीतराग-मुनिमार्ग का पालन नहीं कर सका इसलिये भ्रष्ट होकर उसने मिथ्या मार्ग का प्रवर्तन किया। मान के उदय से उसे ऐसा विचार हुआ कि—जिसप्रकार भगवान ऋषभदेव दादा ने तीर्थंकर होकर तीन लोक में आश्चर्यकारी सामर्थ्य प्राप्त किया है, उसीप्रकार मैं भी दूसरा मत चलाकर उसका नायक होकर उनकी भाँति इंद्र द्वारा पूजा की प्रतीक्षा करूँगा... मैं भी अपने दादा की भाँति तीर्थंकर होऊँगा। (भावी तीर्थंकर होनेवाले द्रव्य में तीर्थंकरत्व की अभिलाषा जागृत हुई।)

भगवान ऋषभदेव की सभा में एक बार भरत चक्रवर्ती ने पूछा कि—प्रभो ! हम सभा में से कोई जीव आपके समान तीर्थंकर होगा ? तब भगवान ने कहा कि—हाँ, यह तेरा पुत्र मरीचीकुमार इस भरतक्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर (महावीर) होगा। प्रभु की वाणी में अपने तीर्थंकरत्व की बात सुनकर मरीची को महान आत्मगौरव का अनुभव हुआ; तथापि अभी तक वह धर्म को प्राप्त नहीं हुआ था। अरे, तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि सुनकर भी उसने धर्म का ग्रहण नहीं किया। आत्मभान के बिना संसार के कितने ही भवों में वह जीव भटकता फिरा।

वह महावीर का जीव मरीची का अवतार पूरा करके ब्रह्मस्वर्ग का देव हुआ। तत्पश्चात् मनुष्य और देव के कुछ भव किये, उनमें मिथ्यामार्ग का सेवन चलता रहा। अंत में

मिथ्यामार्ग के तीव्र सेवन के कुफल से समस्त अधोगतियों में जन्म धारण कर-करके, त्रस-स्थावर पर्यायों में असंख्यात वर्षों तक तीव्र दु:ख भोगे। ऐसा परिभ्रमण कर-करके वह आत्मा खूब थक गया और खेदखिन्न हुआ।

अन्तत: असंख्य भवों में भटक-भटक कर वह जीव राजगृही में एक ब्राह्मण का पुत्र हुआ, वह वेद-वेदांत में परांगत होने पर भी सम्यग्दर्शनरहित था, इसलिये उसका ज्ञान और तप सब व्यर्थ था। मिथ्यात्व के सेवन पूर्वक वहाँ से मरकर वह देव हुआ और फिर राजगृही में विश्वनंदि नामक राजपुत्र हुआ। वहाँ मात्र एक उपवन के लिये संसार का मायाजाल देखकर वह विरक्त हुआ और संभूतस्वामी के निकट जैन दीक्षा ली; वहाँ निदानसहित मरण करके स्वर्ग में गया और वहाँ भरतक्षेत्र के पोदनपुर नगर में बाहुबलिस्वामी की वंश परम्परा में त्रिपुष्ठ नामक अर्धचक्री (वासुदेव) हुआ। वहाँ से तीव्र आरंभ-परिग्रह के परिणामसहित अतृप्त रूप से मरकर सातवें नरक में गया। अरे, उस नरक के घोर दु:खों की क्या बात!! संसार में भटकते हुए जीव ने अज्ञानवश कौन से दु:ख नहीं भोगे होंगे!

महान कष्टपूर्वक असंख्यात वर्षों की वह घोर नरकयातना का काल पूर्ण करके वह जीव गंगा किनारे के सिंहगिरि पर सिंह हुआ... फिर धधकती हुई अग्नि समान पहले नरक में गया और वहाँ से निकलकर जम्बूद्वीप के हिमवन पर्वत पर दैदीप्यमान सिंह हुआ... इसी सिंह पर्याय में महावीर के जीव ने आत्मलाभ प्राप्त किया। किस प्रकार प्राप्त किया? वह प्रसंग देखें—

एक बार वह सिंह क्रूरता से हिरन को फाड़कर खा रहा था कि आकाशमार्ग से गमन करते हुए दो मुनियों ने उसे देखा, और 'यह जीव होनहार अंतिम तीर्थंकर है'—ऐसे विदेह के तीर्थंकर के वचनों का स्मरण करके दयावश आकाशमार्ग से नीचे उतरकर उस सिंह को धर्म का संबोधन किया कि हे भव्य मृगराज! इससे पूर्व त्रिपुष्ठ वासुदेव के भव में तूने अनेक वांछित विषयों का उपभोग किया और नरक के अनेक प्रकार के दु:ख भी अशरणरूप से आक्रन्द कर-करके सहन किये... उस काल दसों दिशाओं में तूने शरण के लिये पुकार की परंतु तुझे कहीं शरण नहीं मिली। अरे! अब भी तू क्रूरतापूर्वक पाप का उपार्जन कर रहा है? अपने घोर अज्ञान के कारण अभी तक तूने तत्त्व को नहीं जाना। इसलिये शांत हो... और इन दुष्ट परिणामों को छोड़! मुनिराज के मधुर वचन सुनते ही सिंह को पूर्वभवों का ज्ञान हुआ और अश्रुधारा बहने

लगी... परिणाम विशुद्ध हुए... तब मुनिराज ने देखा कि इस सिंह के परिणाम शांत हुए हैं और वह आतुरता से देख रहा है, इसलिए वह इस समय अवश्य सम्यक्त्व प्राप्त करेगा।

ऐसा विचार करके मुनिराज ने उसके पुरुखा भील से लेकर अनेक भवों का वर्णन किया और कहा कि हे शार्दूल! अब दसवें भव में तू भरतक्षेत्र का तीर्थंकर होगा—ऐसा हमने विदेहक्षेत्र में श्रीधर तीर्थंकर के मुँह से सुना है। इसलिये हे भव्य! तू मिथ्यामार्ग से निवृत्त होकर आत्महितकारी ऐसे सम्यक्मार्ग में प्रवृत्ति कर!

महावीर का जीव (सिंह) मुनिराज के वचनों से तुरंत प्रतिबोध को प्राप्त हुआ; उसने अत्यंत भक्ति से बारंबार मुनियों को प्रदक्षिणा दी और उनके चरणों में नम्रीभूत हो गया... रौद्ररस के बदले तुरंत ही शांत रस प्रगट हुआ और उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया... इतना ही नहीं, उसने निराहार व्रत अंगीकार किया। अहा, सिंह की शूरवीरता सफल हुई! शास्त्रकार कहते हैं कि उस समय वैराग्य से उसने ऐसा घोर पराक्रम प्रगट किया कि यदि तिर्यंचगति में मोक्ष होता तो अवश्य वह मोक्ष को प्राप्त होता! उस सिंह पर्याय में समाधिमरण करके वह सिंहकेतु नाम का देव हुआ।

वहाँ से धातकी खंड के विदेहक्षेत्र में कनकोज्ज्वल नाम का राजपुत्र हुआ... अब धर्म द्वारा वह जीव मोक्ष के निकट पहुँच रहा था। वहाँ वैराग्यसहित संयम ग्रहण करके सातवें स्वर्ग में गया। वहाँ से साकेतपुरी (अयोध्या) में हरिसेन राजा हुआ और फिर संयमी होकर स्वर्ग में गया। वहाँ से धातकीखंड में पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती राजा हुआ; वहाँ श्री क्षेमंकर तीर्थंकर के समीप दीक्षा ली और सहस्त्रार स्वर्ग में सूर्यप्रभदेव हुआ। वहाँ से जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर में नन्दराजा हुआ और दीक्षा लेकर, उत्तम संयम का पालन करके ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया, दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारणभावना द्वारा तीर्थंकरनामकर्म का बंध किया और संसार का छेदन किया, उत्तम आराधनासहित अच्युत स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में इंद्र हुआ।

वहाँ चयकर महावीर का वह महान आत्मा भरतक्षेत्र में वैशाली के कुंडलपुर के महाराजा सिद्धार्थ के घर में अंतिम तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुआ... यहाँ राजा श्री के वहाँ वैभव की वृद्धि होने के कारण वर्धमान नाम दिया गया था। प्रियकारिणी माता के उस वीर—वर्द्धमान पुत्र ने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन इस भरतभूमि को पावन किया। उन वीर

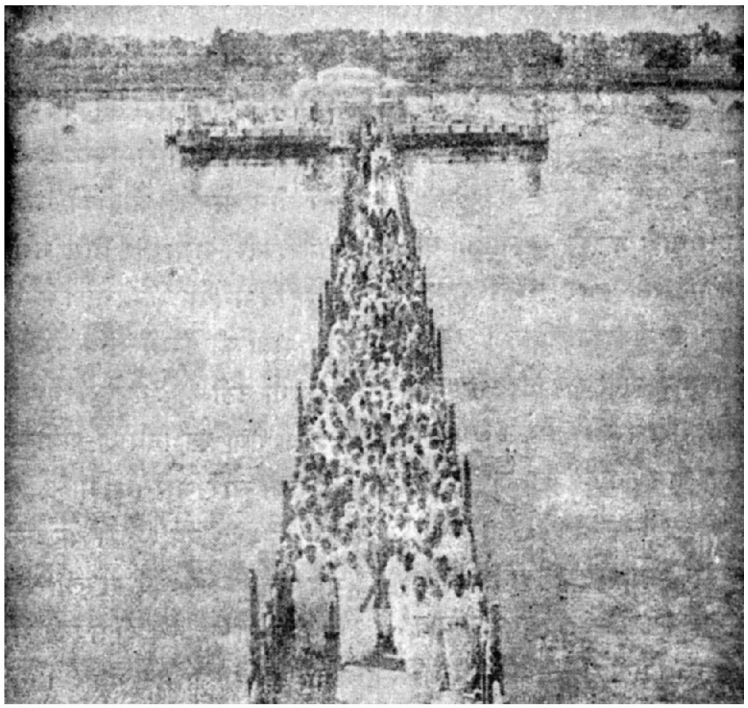

भगवान महावीर
की
निर्वाणभूमि
पावापुरी

वर्द्धमान बाल तीर्थंकर को देखते ही संजय और विजय नाम के मुनियों का संदेह दूर हुआ, इसलिये उन्होंने प्रसन्न होकर 'सन्मतिनाथ' नाम रखा। संगम नामक देव ने भयंकर सर्प का रूप धारण कर उस बालक की निर्भयता एवं वीरता की परीक्षा करके भक्तिपूर्वक 'महावीर' नाम दिया। तीस वर्ष की युवावस्था में तो उन्हें जातिस्मरण हुआ और ब्याह न करके संसार से विरक्त होकर (मगसिर कृष्णा १० के दिन) स्वयं दीक्षित हुए। कूलपाक नगरी के कूल राजा ने उन्हें खीर द्वारा प्रथम आहारदान दिया। उज्जैन नगरी के वन में रुद्र ने उन्हें घोर उपसर्ग किया, परंतु वे महावीर मुनिराज निजध्यान से किंचित् चलायमान नहीं हुए सो नहीं हुए... इसलिए रुद्र ने नम्रीभूत होकर स्तुति की और 'अतिवीर' (महाति महावीर) नाम दिया।

कौशाम्बी नगर में बंधनग्रस्त सती चंदनबाला को उन पाँच नामधारी प्रभु के दर्शन होते ही उसकी बेड़ी के बंधन टूट गये और उसने परमभक्ति सहित प्रभु को आहारदान दिया। साढ़े बारह वर्ष तक मुनिदशा में रहकर वैशाख शुक्ला १०वीं के दिन, सम्मेदशिखरजी तीर्थ से लगभग दस मील दूर जृंभिक ग्राम की ऋजुकूला नदी के किनारे क्षपकश्रेणी लगाकर प्रभु ने केवलज्ञान प्रगट किया। वे अरहंत भगवान राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर पधारे और ६६

दिन के पश्चात् श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से दिव्यध्वनि द्वारा धर्मामृत की वर्षा प्रारम्भ हुई... जिसे झेलकर इन्द्रभूति गौतम आदि अनेक जीवों ने प्रतिबोध प्राप्त किया। महावीर स्वामी की धर्म सभा में ७०० तो केवली भगवान थे। कुल १४०० मुनिवर और ३६०० अर्जिकाएँ थीं। एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएँ थीं। असंख्य देव और संख्यात तिर्यंच थे। तीस वर्ष तक लाखों-करोड़ों जीवों को बोध देकर वीर प्रभु पावापुरी नगरी में पधारे और वहाँ के उद्यान में योग निरोध करके विराजमान हुए.... कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रातःकाल परम सिद्धपद को प्राप्त कर सिद्धालय में जाकर विराजमान हुए... उन सिद्धप्रभु को नमस्कार हो।

अर्हंत सब ही कर्म के कर नाश इस ही रीतिसों,
उपदेश भी उसका ही दे, सिद्धि गये नमूँ उनको।
श्रमणों जिनों तीर्थंकरों सब सेय एक ही मार्ग को,
सिद्धि गये नमूं उन्हींको-निर्वाण के उस मार्ग को।

(प्रवचनसार)

भगवान महावीर ने जब मोक्ष गमन किया, उस समय अमावस्या की अंधेरी रात्रि होने पर भी सर्वत्र एक चमत्कारी दिव्य प्रकाश फैल गया था और तीन लोक के जीवों को भगवान की मुक्ति के आनंदकारी समाचार मिल गये थे। देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रों ने भगवान के मोक्ष का महा-महोत्सव किया। अमावस्या की काली रात्रि करोड़ों दीपों के प्रकाश से जगमगा उठी... करोड़ों दीपों की आवलियों से मनाया गया वह निर्वाण-महोत्सव दीपावली-पर्व के रूप में सारे भारत में प्रसिद्ध हुआ और ईसवी सन् के ५२७ वर्ष पूर्व का यह प्रसंग आज भी हम सब आनंदपूर्वक दीपावली-पर्व के रूप में आनंदपूर्वक मना रहे हैं। दीपावली भारत का सर्व मान्य आनंदकारी धार्मिक पर्व है।

—ऐसे इस दीपावली-पर्व के मंगल अवसर पर वीर प्रभु की आत्म साधना का स्मरण करके हम भी उस मार्ग पर विचरें और आत्मा में रत्नत्रय के दीप प्रकाशित करके अपूर्व दीपावली मनायें।

जय महावीर!

मंगल-प्रवचन

परमात्मप्रकाश और समयसार

आज मंगल सुप्रभात है। यहाँ मंगलाचरण के रूप में परमात्मप्रकाश में पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार चल रहा है। जगत में पंच परमेष्ठी महान मंगल हैं और उन्हें पहिचानकर नमस्कार करने से आत्मा के भाव में पवित्रता होती है, वह भी मंगल है। आत्मा की पहिचान और श्रद्धा करना, वह महान मंगल है, उसके फल में केवलज्ञान से जगमगाता हुआ पूर्ण सुप्रभात उदित होता है और उसके साधकरूप से सम्यक्त्वादि प्रगट हुए, वह मंगल सुप्रभात है।

पंचपरमेष्ठी के आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद की ऊर्मियाँ उछलती हैं, चैतन्यस्वरूप में मग्न होकर अतीन्द्रिय आनंद का वेदन करते हैं। यह आत्मा ऐसे ही आनंद का धाम है। अहा, वीतराग मार्ग के संत सिंह समान होते हैं... जगत की जिन्हें चिंता नहीं है, जो चैतन्य सूर्य के तेज से तपते हुए आत्मा में शुद्धोपयोग द्वारा विचरते हैं—वर्तते हैं—लीन होते हैं और जगत के जीवों को उसका उपदेश देते हैं, ऐसे वीतरागमार्गी संत, केवलज्ञान के साधक हैं। अहा, केवलज्ञान होने से अनंत चक्षु खुल जाते हैं। ढाई द्वीप में करोड़ों मुनि विराजमान हैं, लाखों केवली-अरिहंत भगवान एवं लोकाग्र में अनंत सिद्ध विराजते हैं—उनका स्वरूप लक्ष में लेने से ज्ञान निर्मल होता है। उनके जैसा शुद्ध आत्मा ही मुझे उपादेय है, अपना शुद्धात्मा ही मुझे उपादेय है और उससे विरुद्ध सब कुछ हेय है। मेरा असंख्य प्रदेशी चैतन्य शरीर सदा निरोग-राग के रोग रहित है। जगत के छह द्रव्यों में आत्मा सबसे महान महिमावंत है, आत्मा में भी पंच परमेष्ठी उपादेय हैं, उनमें भी सिद्ध भगवंत संपूर्ण शुद्ध हैं। और उन सिद्ध भगवान जैसा इस आत्मा का जो त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव है, वह निश्चय से परम उपादेय है। ऐसे आत्मा को उपादेयरूप से लक्ष में लेकर पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया है। ऐसा शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा उपदेश संत देते हैं कि—अरे जीवो! शुद्धात्मा को ही उपादेय करके हम परमात्मपद को साधते हैं और तुम्हें भी यही परमतत्त्व उपादेय है, इससे भिन्न कुछ उपादेय नहीं है। शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञान-आनंदरूप जो आटा, घी और गुड़ उससे बना हुआ चैतन्य-कंसार, वह अतीन्द्रिय स्वाद

से भरपूर है। देखो, यह नूतन वर्ष की मिठाई। 'जिसने ऐसी मिठाई खायी, उसने भव की भूख भगायी।' भाई, ऐसे आत्मा को श्रद्धा में-अनुभव में लेकर आत्मा में ऐसा प्रभात उदित कर कि जिस मंगल प्रभात का कभी अस्त न हो... केवलज्ञानरूप ऐसा अप्रतिहत प्रभात उदित हो कि जो सादि-अनंत आनंद में स्थिर रहे। आत्मा में अपूर्व मंगल वर्ष का प्रारंभ हुआ... मंगल प्रभात उदित हुआ।

धर्मी जीव जानता है कि जो मेरे स्वरूप का अस्तित्व है, उसमें कर्म की १४८ प्रकृतियों में से एक भी प्रकृति है ही नहीं; और उस प्रकृति के फलरूप जो परभाव हैं, वे भी मेरे स्वभाव में नहीं हैं। मेरे स्वभाव का फल तो पूर्ण ज्ञान और आनंदरूप है; उसमें कर्म का फल नहीं है, दुःख नहीं है, अपूर्णता नहीं है।

देखो भाई! वह दीपावली—नूतन वर्ष की भेंद दी जा रही है। अहा, तेरा आत्मवैभव अचिंत्य निधान से भरपूर है, उस निधान को खोलकर संत तुझे बतलाते हैं कि देख यह अपना निधान!! अहा, चैतन्य के अनुभव की क्या बात करें?—कि जिस पद की पूरी महिमा जैसी ज्ञान में भासित हुई, वैसी वाणी में पूरी नहीं आ सकती। ऐसी तेरे स्वभाव की अचिंत्य महिमा है, वह महिमा जिसे भासित हो, उसके आत्मा में ज्ञानदीपक प्रज्वलित हो उठता है। प्रभो! पुण्य और संयोग के पीछे दौड़ने से तेरे चैतन्य का माहात्म्य लुटता है। अपने चैतन्य की महत्ता को चूककर पर की महत्ता करने में तू कहाँ रुका है? पर की महत्ता कर-करके और स्वभाव की महत्ता भूल-भूलकर तू संसार में भटक रहा है परंतु जहाँ स्वभाव का माहात्म्य लक्ष में लेकर उसके अनुभव में स्थिर हुआ, वहाँ धर्मी के उस अनुभव में समस्त कर्मों का और उनके फल का अभाव है; धर्मी उस कर्म फल को नहीं भोगता, वह तो चैतन्य के आनंद का ही उपभोग करता है। भगवान महावीर जिस मार्ग से मोक्ष पधारे, उस मार्ग पर प्रयाण करने का पहला कदम यह है कि ऐसे स्वभाव की महिमा लाकर उसमें अंतर्मुख होना। अहो, अंतर में दृष्टि करके जिन्होंने निज-निधान को देखा है, वे सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा शुद्धात्मप्रतीति के बलपूर्वक कहते हैं कि परभावों का उपभोग वास्तव में हमारे स्वरूप में नहीं है; हमारा स्वरूप तो आनंद का ही उपभोग देनेवाला है। देखो, यह नूतनवर्ष में आत्मानंद के उपभोग की बात!

चक्रवर्ती या तीर्थंकर के लोकोत्तर पुण्य की तो क्या बात करें?—परंतु वह चैतन्य के विभाव के फल से बँधा हुआ पुण्य है, उसका उपभोग ज्ञानी को नहीं है। ज्ञानी तो ऐसा वेदन

करते हैं कि—मैं ही अपने आनंद का भोक्ता हूँ... चैतन्य के स्वभाव से बाह्य किसी भाव का उपभोग मैं नहीं करता। चैतन्य साधना की भूमिका कैसी होती है और उस भूमिका का पुण्य कैसा होता है, वह बात साधारण जनता के ध्यान में आना कठिन है... साधक को एक विकल्प से जो पुण्य बंधता है, वह जगत को आश्चर्यचकित कर देता है, तो फिर साधकभाव की महिमा की क्या बात!! जगत को आश्चर्यचकित कर देनेवाले उस पुण्य के उपभोग की रुचि धर्मात्मा के रोम में भी नहीं है। यह तो वीतराग का मार्ग है, वीर का मार्ग है।

हरि का (प्रभु का) मारग है शूरों का....
नहिं कायर का काम....

पापसमूह को हरनेवाले ऐसे वीतराग भगवान का यह वीरमार्ग, वह शूरवीरों का मार्ग है, उसमें कायर का काम नहीं है, अर्थात् राग की वृत्ति में जिसे मिठास लगती है—ऐसा कायर जीव वीतरागता के वीरमार्ग को नहीं साध सकता। जिस चैतन्य में राग का एक अंश भी नहीं है, ऐसे चैतन्य को साधना, वह तो शूरवीर का काम है। हरि का मार्ग अर्थात् चैतन्य की पवित्रता का मार्ग, वह पुण्य से तो कहीं दूर है, उसमें राग का प्रवेश नहीं है, राग का या पुण्य फल का उपभोग उसमें नहीं है। अहा, ऐसे वीतराग मार्ग की साधना करना, वह तो वीर का काम है। राग के रस में रुक जाये—वह वीर का काम नहीं है, यह तो कायर का काम है। वीर का काम तो यह है कि राग से पार होकर चिदानंदस्वभाव को अनुभव में ले और मोक्षमार्ग को साधे। राग के बंधन में बँधा रहे, उसे वीर कैसे कहा जायेगा? वीर तो उसे कहा जाता है कि जो राग के बंधन तोड़ डाले।

साधक का एक विकल्प—जिससे तीर्थंकर नामकर्म जैसे जगत के आश्चर्यकारी पुण्य बँधते हैं, तो उस विकल्प में रहे हुए पवित्र साधकभाव की महिमा की तो बात ही क्या? इसप्रकार पवित्रता और पुण्य दोनों की संधि होने पर भी पवित्रता का उपभोग धर्मी के अंतर में होता है और पुण्य का उपभोग धर्मी के अंतर से बाह्य है, उसका उपभोग धर्मी के अनुभव में नहीं है। वाह! देखो यह नूतनवर्ष की अपूर्व बात!! अहा, साधक भाव... जिसके एक अंश की भी ऐसी अचिंत्य महिमा है कि तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य भी जिसकी बराबरी नहीं कर सकता। तीर्थंकर प्रकृति तो साधक को पवित्रता के अंश में रहे हुए विकल्परूप विभाव का फल है, जबकि साधकभाव, वह स्वभाव का फल है;—दोनों की जाति ही भिन्न है।

धर्मी को चैतन्य की जो महिमा जागृत हुई है, उसे राग लूट नहीं सकता। चैतन्य की महिमा जागृत हुई, वह बढ़कर केवलज्ञानरूपी पूर्ण सुप्रभात उदित होगा। वह मंगल है। चैतन्य-स्वभाव जगत में सर्वोत्कृष्ट मंगलरूप पदार्थ है, उसकी महिमा की और उसकी सन्मुखता का भाव जागृत होना भी अपूर्व मंगल है। ऐसा मंगल प्रभात आत्मा में प्रगट हुआ, वह सच्चा मंगल नूतनवर्ष है।

क्षणिक-जीवन

[रचि० श्री सूरजभान जैन 'प्रेम', आगरा]

अब लगाले लगन, कर प्रभू का भजन,
चेत प्रानी। बीती जाए तेरी जिंदगानी ।टेक ॥

जिसको कहता है पगले तू अपना। यह तो संसार का झूंठा सपना।
नहीं कोई सगा, आखिर देंगे दगा। बहता पानी ॥१ ।बीती जाए० ॥
यह तो संसार की ममता माया। इस चक्कर ने तुझको फँसाया।
ये तो झूंठा जहाँ, कोई है ना यहाँ। दुख दानी ॥२ ।बीती जाए० ॥
बड़ी मुश्किल से नर जन्म पाया। और पाकर के यों ही गमाया।
कुछ नहीं कर पायगा, आखिर पछतायगा ॥ सुन अज्ञानी ॥३ ।बीती जाए० ॥
प्रभू भक्ती में जीवन बिताले। यहाँ आकर के धर्म कमाले।
'प्रेम' शांति मिले, जीवन ज्योति जगे। भव्य ज्ञानी ॥४ ।बीती जाए० ॥

मंगल प्रभात की मंगल वाणी

यह नूतन वर्ष का मंगल प्रभात है

* आज मंगल प्रभात में पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार।
* पंच परमेष्ठी के आत्मा में आनंद की ऊर्मियाँ उछलती हैं।
* उन पंच परमेष्ठी को पहिचान कर नमस्कार करने से आत्मा के भाव में पवित्रता होती है वह मंगल है।
* पंच परमेष्ठी के प्रसाद से हम चैतन्यरस का पान करेंगे और भव की भूख मिटायेंगे।—यह नूतन वर्ष का मिष्ठान्न!
* अहा, चैतन्य सुख के अनुभव की क्या बात है!
* समस्त कर्म और परभाव मेरे अनुभव से बाहर हैं।
* साधक को एक विकल्प से जो पुण्यबंध होता है, वह पुण्य भी जगत को आश्चर्यचकित कर देता है, तो उसकी निर्विकल्प साधकभाव की महिमा की क्या बात!
* वीतराग प्रभु का वीर मार्ग यह शूरवीर का मार्ग है। अहा! ऐसे वीतराग मार्ग की साधना वह तो वीरों का काम है... वह कायरों का काम नहीं है।
* जो राग के बंधन में बँधा रहे, उसे वीर कैसे कहा जा सकता है? वीर तो उसे कहते हैं जो राग के बंधनों को तोड़कर मोक्षमार्ग को साधे।
* अहा, साधकभाव के एक अंश की भी ऐसी अचिंत्यमहिमा है कि तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य भी उसके बराबर नहीं हो सकता। [कारण कि ये है वीतरागी अंश और वो है शुभराग के फल, जिसे समयसार टीका में कर्मरूपी विष वृक्ष के फल कहे हैं।]
* तीर्थंकर प्रकृति तो विभाव का फल है और साधकभाव, वह स्वभाव का फल है।—दोनों की जाति ही भिन्न है।
* साधक को चैतन्य की जो महिमा जागृत हुई, राग उसे लूट नहीं सकेगा। चैतन्य महिमा में आगे बढ़कर वह केवलज्ञानरूपी सुप्रभात को साधेगा।
* साधक को चैतन्य की साधना के लिये जगत में सब कुछ अनुकूल है, उसे कुछ प्रतिकूल है ही नहीं; क्योंकि उसकी साधना आत्मा के आधार से है, संयोग के आधार से नहीं है।

* मुमुक्षु प्रतिकूलता के प्रसंग को भी धर्म भाव की तीव्रता का तथा जिनभक्ति एवं आत्म-साधना आदि की उत्कृष्टता का कारण बनाता है।
* धर्म भावना में तथा जिनेन्द्रदेव के चरण में जिसका मन अचल है, उसे प्रतिकूलता कैसी ?
* भगवान किंचित् भी दूर नहीं हैं; भगवान तो साधक के ज्ञान में ही विराजमान हैं।
* जीवन के प्रत्येक क्षण का प्रवाह चैतन्यसाधना के हेतु ही प्रवाहित हो।

श्रीसमयसार स्तुति

(गुजराती का हिन्दी अनुवाद)

(हरिगीतिका)

संसारी-जीव का भावमरण, जु टालने करुणा कर
सरिता बहाई सुधा की, प्रभु वीर! तुम संजीवनी
सूखती देखी सरित, करुणा-मयी हृदय करा
मुनि कुन्द संजीवनि, समय प्राभृत-सुखद-भाजन, भरा
कुन्दकुन्द शास्त्र रचा, व अमृत चन्द्र पूरा साथिया
ग्रंथाधिराज! तुझे सकल ब्रह्मांड-भावों से भरा

(शिखरणी)

अहो वाणी तेरी प्रशम-रस-भावों छलकती
मुमुक्षु पीते हैं, अमृत-रस, भर भर अंजली
अनादि की मूर्छा, विष-सम तुरत ही उतरती
विभावों से थँभकर, स्वरूप में दौड़े परणती

(हरिगीतिका)

तू है निश्चय ग्रंथ, सब-व्यवहार के भंग भेदता
तू प्रज्ञा छैनी, ज्ञान से, सब उदय-संधी छेदता

साथी-साधक, भानु-जग, सन्देश श्री महावीर का
विश्राम है, भव क्लांत उर को, पंथ है तू मुक्ति का
सुनकर तुझे, रस कर्म का बंधन शिथिल हो जात है
तुमको समझने पर सकल ज्ञानी हृदय समजात है
तेरी रुचि से, जगत की रुचि सर्वथा टल जाय है
तू रीझता तो, सकल-ज्ञायक-देव रीझा जाय है

(अनुष्टुप)

बनाऊँ पत्र कुंदन के, लिखूं, रत्नों के अक्षर से
तथापी कुंद-सूत्रों का, न मूल्यांकन कभी होवे

अनुवादक
'इन्दु' जैन, ऐत्मादपुर

सर्वज्ञ वीतराग कथित पदार्थ-विज्ञान

हरेक पदार्थ अनादि-अनंत और स्वतः-सिद्ध है; इसलिये उनकी सर्वशक्ति (गुण) भी नित्य है, स्वतः-सिद्ध है, अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिपूर्ण है और परद्रव्यादिक से सदा पृथक् ही है। जो एकीभाव से अपने-अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर परिणमन करता रहता है, ऐसे छह जाति के द्रव्य=पदार्थ के नाम-जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और कालाणु, जो अपने स्वरूप में सदा निश्चल है, विश्व में सर्वत्र जो कुछ जितने-जितने पदार्थ हैं, वे सभी अपने-अपने स्वरूप में अवस्थित हैं-हैं और हैं। यदि उसे अन्य प्रकार माना जाये तो सबका मिश्रण और अन्यथापन आदि सर्व दोष आ पड़ते हैं।

तब कैसे हैं, वह सभी पदार्थ? अपने-अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहे हुए अपने अनंत धर्मों (अनंत गुणों) के समूह को स्पर्शित हैं किंतु जो कभी भी परस्पर एक दूसरों को स्पर्श करते नहीं (पररूप होते नहीं)। अत्यंत निकट एक क्षेत्रावगाहरूप रह रहे हैं, फिर भी वे सदाकाल

अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते। पररूप परिणमन न करने से अपनी अनंत व्यक्ति नष्ट नहीं होती। प्रत्येक पदार्थ सदा स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव से ही है; पर से नहीं है, पर के आधीन नहीं है। इसलिये प्रत्येक पदार्थ के अनंत धर्मों में से एक भी धर्म एकरूप परिणमते नहीं। अत: पदार्थों की अनंत प्रगटता—जितनी संख्यारूप व्यक्ति है, कभी कम नहीं होती। अत: यह सिद्धांत सिद्ध होता है कि—कोई द्रव्य अन्य किसी का कार्य (-परिणाम) को करे-करा सके, ऐसा वस्तु स्वरूप कभी नहीं है। तात्पर्य क्या है कि सर्वज्ञ वीतराग कथित, छहों जाति के सब द्रव्यों की स्वतंत्रता का निश्चय कर, पर से मेरा कुछ भी भला-बुरा हो सकता नहीं, न मैं पर का कुछ कर सकता, संयोग कोई सुख-दु:ख दाता नहीं है, हम ही हमारी झूठी मान्यता से और विपरीत उपाय से दु:खी होते हैं, अत: पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर अपना हित-अहित अपने द्वारा ही होता है, ऐसे नियम को नित्य की दृढ़ता सहित याद रखें। अनंत गुण सम्पन्न निज शुद्धात्मा को ही उपादेय मानकर निज परमात्म द्रव्य के आश्रय से ही सुख और सुख का उपाय है, ऐसी निरंतर दृढ़ श्रद्धा करते रहना सच्चे सुख के लिये उपाय करने का यह प्रारंभ है।

मूढत्व का स्वभाव (कवित्त)

जो पै चारों १—वेद पढ़े, रचि पचि रीझ रीझ, पंडित की कला में प्रवीन तू कहायो है।
धरम व्यौहार ग्रंथ, ताहू के अनेक भेद, ताके पढ़े निपून प्रसिद्ध तोहि गायो है॥
आतम के तत्त्व को निमित्त कहूँ रंच पायो, तौलों ताहि ग्रंथनि में ऐसे के बतायो है।
जैसे रस व्यंजन में करछी फिरै सदैव, मूढ़ता स्वभाव सों न स्वाद कछु पायो है॥

भेदज्ञान द्वारा उपशम की प्राप्ति

[समयसार सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से]

— २ —

इस लेख का प्रथम भाग आत्मधर्म के २५७वें अंक में आ गया है; शेष भाग यहाँ दे रहे हैं। उपशमभाव कि जिसे जीव ने कभी प्राप्त नहीं किया, उसकी प्राप्ति की प्रेरणा देते हुए आचार्य प्रभु कहते हैं कि अरे जीव! राग-द्वेष का कारण न तो कहीं पर में है और न तेरे ज्ञान में है; ज्ञान और ज्ञेयों की अत्यंत भिन्नतारूप वस्तुस्वरूप को जो जानता है, वह समस्त ज्ञेयों से अत्यंत उदासीन वर्तता हुआ अवश्य उपशम को प्राप्त होता है। अरे, ऐसी वीतरागी बात लक्ष में आने पर भी जो उपशम को प्राप्त नहीं होता, वह वास्तव में मूढ़बुद्धि है। अरे मूढ़! जैसी पर की मिठास है, वैसी तेरे ज्ञान की मिठास तुझे क्यों नहीं आती?—क्यों तू अपने ज्ञानस्वभाव की ओर नहीं ढलता? भाई! ज्ञान के वीतरागी स्वभाव को जानकर उस ओर ढल... और शांतभाव प्राप्त कर!

आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है; ज्ञान का स्वभाव पर से उदासीन रहकर स्वयं स्व-पर को जाने ऐसा है। ऐसे ज्ञान को भूलकर अज्ञानी परज्ञेयों को इष्ट अनिष्ट समझकर राग-द्वेष करता है। उसे यहाँ समझाते हैं कि हे भाई! सामनेवाले पदार्थ कहीं तुझसे ऐसा नहीं कहते कि तू हमारी ओर देख। ज्ञेयों में प्रमेय स्वभाव है, परंतु तुझे राग-द्वेष करायें, ऐसा स्वभाव उनमें नहीं है; और तेरे ज्ञान का स्वभाव भी ऐसा नहीं है कि ज्ञेयों में जाकर उनका ग्रहण करे। ज्ञेयों से उदासीन-पृथक् रहकर ही ज्ञान जानता है।

बाह्य संयोग अनुकूल हों या प्रतिकूल, वे आत्मा के ज्ञान में अकिंचित्कर हैं। आत्मा उन संयोगों का स्पर्श नहीं करता। और संयोग आत्मा का स्पर्श नहीं करते। जगत में अनंत द्रव्य एक क्षेत्र में स्थित होने पर भी वे एक-दूसरे को चूमते नहीं हैं-स्पर्श नहीं करते; परस्पर एक-दूसरे को छूते भी नहीं हैं, तो वे एक-दूसरे का क्या करेंगे?

यह निंदा के शब्द, कुरूप, दुर्गंधादि मुझे ठीक नहीं है—ऐसा समझकर अज्ञानी उसके प्रति द्वेष करता है, परंतु ज्ञानी उसे समझाते है कि भाई! वे शब्द-रूप-गंध आदि कहीं तेरे ज्ञान

का स्पर्श नहीं करते फिर वे तुझे अच्छे या बुरे कैसे हो सकते हैं ? वे परद्रव्य कहीं तुझमें दोष उत्पन्न नहीं करते कि तू उन पर क्रोध करता है। तथा वे परद्रव्य कहीं तुझमें गुण उत्पन्न नहीं करते कि तू उन पर अनुरंजित होता है। परद्रव्य के प्रति व्यर्थ ही राग-द्वेष करके तू अपने ज्ञान को भूल रहा है और उपशांत-रस के बदले आकुलता का ही उपभोग कर रहा है।

तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय तुझमें, पर के द्रव्य-गुण-पर्याय पर में। ऐसे वस्तुस्वरूप को जानकर स्व-पर की भिन्नता का भेदज्ञान करके ज्ञान उपशमभावरूप परिणमित हो, वह शास्त्रों का तात्पर्य है। ऐसा उपशमभाव यदि प्रगट न करे तो उसका सब ज्ञातृत्व निष्फल है; ज्ञान का जो फल है, उसे वह नहीं जानता।

अपने को इष्ट न लगती हो, ऐसी वस्तु ज्ञान में ज्ञात होने से अज्ञानी तो ऐसी मिथ्याबुद्धि करता है कि मानों वह वस्तु ज्ञान में घुसकर ज्ञान को बिगाड़ रही हो! परंतु भाई, सर्वज्ञ के ज्ञान में क्या ज्ञात नहीं होता ? सब कुछ ज्ञात होता है; और फिर भी उस ज्ञान में किंचित् राग-द्वेष होते हैं ?-नहीं होते। यदि पदार्थ ही इष्ट-अनिष्ट होकर राग-द्वेष कराने लग जायें, तब तो सर्वज्ञ के ज्ञान में भी राग-द्वेष हों! क्योंकि सर्वज्ञ तो सभी को जानते हैं; परंतु ज्ञान में परद्रव्य, राग-द्वेष नहीं है, सर्वज्ञ का ज्ञान सर्व ज्ञेयों को जानते हुए भी सर्वत्र उदासीन हैं, कहीं भी आसक्त नहीं है, उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा का ज्ञानस्वभाव राग-द्वेष रहित है, पर से उदासीन है; ज्ञान की स्वच्छता में परज्ञेय ज्ञात भले हों, परंतु उससे कहीं वे ज्ञान में राग-द्वेष नहीं करते। अहा, कितना स्वतंत्र ज्ञान!! उस ज्ञान को पर में कहीं राग-द्वेष करके अटकना नहीं होता। ज्ञान तो अपने स्वरूप से ज्ञाता ही है। राग को जाननेवाला रागरूप परिणमित नहीं होता, वह तो ज्ञानरूप ही परिणमित होता है।

अरे, तुझे यह क्या हुआ है कि ज्ञान की शांत-उदासीन दशा के बदले तू राग-द्वेष में वर्त रहा है ? स्व-पर की अत्यंत भिन्नता हमने बतलायी, उसे सुनकर भी तू उपशम को प्राप्त क्यों नहीं होता ? परज्ञेय कहीं तुझे जबरन नहीं खींचता और तेरा ज्ञान भी कहीं आत्मा को छोड़कर परज्ञेय में नहीं जाता। ज्ञान पर को जाने, उसका कहीं निषेध नहीं है; परंतु उस समय अज्ञानी अपने ज्ञान का ज्ञानत्व चूक जाता है और पदार्थों को, राग-द्वेष को तथा ज्ञान को एकमेक रूप मानता है, इसलिये भिन्न ज्ञान के शांत अनाकुल चैतन्यरस का वह अनुभवन नहीं करता।

एक ओर सिद्ध भगवंत तथा अरिहंत-तीर्थंकर-गणधरादि का समूह विराजमान हो,

दूसरी ओर धर्म के द्रोही मिथ्यादृष्टि और तीव्र पाप करनेवाले जीवों का समूह हो; वहाँ गुणीजनों के प्रति सहज ही साधक धर्मात्मा को प्रमोद एवं भक्ति आती है; परंतु वे गुणीजन कहीं ज्ञान को राग करने के लिये नहीं कहते; और दुर्जनों का समूह जगत में हो, वह कहीं ज्ञान को द्वेष करने के लिये नहीं कहता, अर्थात् किसी भी पदार्थ के कारण तो राग-द्वेष है ही नहीं। अब रही अपने में देखने की बात; अपने में भी ज्ञान का स्वरूप तो कहीं राग-द्वेष करने का नहीं है। ज्ञान अपने में से बाहर नहीं जाता; इसलिये ज्ञान, राग-द्वेष का कारण नहीं है।—इसप्रकार राग-द्वेष का कारण न तो कहीं पर में है, नहीं अपने ज्ञान में है; इसलिये ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता का ऐसा वस्तुस्वरूप जो जानता है, वह समस्त ज्ञेयों से अत्यन्त उदासीन वर्तता हुआ अवश्य उपशम को प्राप्त होता है। अरे, ऐसी वीतरागी बात लक्ष में आने पर भी जो उपशम को नहीं होता और पर में इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करता है, वह मूढ़-दुर्बुद्धि है। भाई, ऐसा वस्तुस्वरूप जानने पर भी तू क्यों अपने ज्ञानस्वभाव की ओर नहीं ढलता? जैसे पर की मिठास है, वैसी ही अपने ज्ञान की मिठास तुझे क्यों नहीं आती? भाई, ज्ञान के वीतरागी स्वभाव को जानकर उस ओर उन्मुख हो... और शांतभाव को प्राप्त कर।

चैतन्यमय आत्मा अपने चेतन गुण-पर्यायों में ही वर्तता है परंतु उनसे बाहर नहीं वर्तता। और बाह्य पदार्थ सब अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही वर्तते हैं; वे इस आत्मा में नहीं आते। इसप्रकार जगत के पदार्थ अपने-अपने गुण-पर्यायरूप निजस्वरूप में ही वर्त रहे हैं और अन्य पदार्थ में वे कुछ भी नहीं करते। फिर दूसरा तुझमें क्या करेगा? कुछ भी नहीं करेगा। तो फिर उसके प्रति राग-द्वेष कैसा? भेदज्ञान द्वारा ऐसा वस्तुस्वरूप जानने से ज्ञान पर के प्रति उदासीन वर्तता हुआ अपने स्वभाव में ही तत्पर रहता है; इसलिये वह उदासीन ज्ञान-वीतरागी ज्ञान कहीं राग-द्वेष का कर्ता नहीं होता, उपशांत भाव का ही वेदन करता है। जहाँ पर में कर्तृत्व की बुद्धि है, वहाँ राग-द्वेष होते ही हैं और ज्ञान में उदासीन वृत्ति नहीं रहती।

प्रथम स्व-पर के विभाग और अंतर में स्वभाव तथा परभाव के विभाग करने से ज्ञान पर्याय निजस्वभाव के साथ एकता करे, इसलिये परभाव के प्रति तथा परद्रव्य के प्रति सहज ही उपेक्षावृत्ति होती है; परंतु जिसे स्व-पर के विभाग करना ही न आये, वह कहाँ स्थिर होगा? और कहाँ से पीछे हटेगा? अज्ञानी दौड़धूप और आकुलता से पर में ही उपयोग को भटकाता है, परंतु उपयोग तो मेरा स्वद्रव्य है—इसप्रकार स्व में उपयोग को नहीं लगाता। उसे यहाँ स्पष्ट

वस्तुस्वरूप समझाकर भेदज्ञान कराया है कि जो भेदज्ञान होने पर स्वद्रव्य के अवलंबन से उपशांत रस का वेदन होता है।

अरे जीव! तू शांत हो... शांत हो। तेरा ज्ञान ही तेरी शांति का धाम है। दूसरा द्रव्य तेरे ज्ञान में अशांति उत्पन्न नहीं करता तथा दूसरा द्रव्य तुझे शांति भी नहीं देता; इसलिये परद्रव्य में शांति की खोज मत कर और न परद्रव्य के प्रति द्वेष कर। परद्रव्य तेरे ज्ञान को अपनी ओर नहीं खींचते और तेरा ज्ञान भी कहीं आत्मा में से बाहर निकलकर पर में नहीं चला जाता—ऐसी भिन्नता है, तो फिर राग-द्वेष उत्पन्न होने का स्थान ही कहाँ है? राग-द्वेष न तो ज्ञान में हैं और न ज्ञेय राग-द्वेष कराते हैं; इसलिये जिसे ज्ञान और ज्ञेय के भिन्न वस्तु स्वरूप की पहिचान है, वह तो ज्ञान में ही तन्मय रहता हुआ, राग-द्वेष में किंचित्मात्र तन्मय न वर्तता हुआ ज्ञान की निराकुल शांति का अनुभव करता है और ऐसे ज्ञानी ही मोक्ष को साधते हैं।

अज्ञानी संयोगों को अनुकूल-प्रतिकूलरूप ही देखते हैं और उनके प्रति राग-द्वेष करके दुःखी होते हैं; परंतु मेरा पदार्थों के साथ संबंध नहीं है, मैं तो ज्ञान हूँ—इसप्रकार यदि तटस्थ ज्ञानरूप ही रहे तो राग-द्वेष रहित उपशांतभाव बना रहे। सुंदर या असुंदर जो बाह्य पदार्थ हैं, वे कहीं ज्ञान में विक्रिया उत्पन्न नहीं करते; जगत के ज्ञेय अपने-अपने स्वभाव से विचित्र परिणतिरूप परिणमित होते हैं और ज्ञान उन्हें अपने स्वभाव से ही जानता है। पदार्थ समीप हो या दूर हो; उससे ज्ञान के ज्ञाता स्वभाव में कोई अंतर नहीं पड़ जाता। ऐसे ज्ञान को जो नहीं जानता, वह अज्ञानी शास्त्र पढ़-पढ़कर भी शास्त्रों के सच्चे फलरूप उपशम को प्राप्त नहीं होता। शास्त्र के सच्चे ज्ञान का तात्पर्य तो उपशम प्राप्ति है; और ऐसे उपशमसहित जीवन ही सच्चा जीवन है। अज्ञानमय राग-द्वेष, वह मरण है; ज्ञानमय वीतराग जीवन ही सच्चा आत्म जीवन है। जिसमें शांति न हो, उसे जीवन कैसे कहा जायेगा? उसमें तो आत्मा अकुला रहा है... ज्ञानमयभाव से जो शांति का वेदन हो, वह आनंदमय जीवन है।

जिसप्रकार दीपक पदार्थों के प्रति उदासीन है; दीपक के प्रकाश में सोना हो या कोयला, सर्प हो या हार, रोगी हो या निरोगी; वहाँ दीपक तटस्थ ही है; उसे पदार्थों के कारण कोई विक्रिया नहीं होती। कोयला या सर्प आने से उसका प्रकाश धीमा पड़ जाये और सोने का ढ़ेर या हार आने से बढ़ जाये, ऐसा नहीं होता; उसीप्रकार ज्ञान दीपक-चैतन्य दीपक जगत के ज्ञेय पदार्थों के प्रति उदासीन है, राग-द्वेष रहित है। ज्ञान प्रकाश में कोई रोग या निरोग, सोना या

कोयला, निंदा के या प्रशंसा के शब्द, सुंदरता या कुरूपता—यह कोई वस्तु राग-द्वेष नहीं कराती, तथा ज्ञान प्रकाश में ऐसा स्वभाव नहीं है कि किसी के प्रति राग-द्वेष करे। भिन्नरूप पृथक्रूप रहकर, मध्यस्थ रहकर, स्वयं अपने ज्ञानभाव में ही रहता हुआ ज्ञान परम उपशांत भाव को प्राप्त होता है।—ऐसा विशुद्धज्ञान ही मोक्ष हेतु है।

धन संचय

प्रेषक - महेन्द्र जैन 'प्रेम', आगरा (आयु १५ वर्ष)

सम्राट चन्द्रगुप्त जब अपने गुरु भद्रबाहुस्वामी से दीक्षा लेने लगे, तब प्रजाजनों ने एकत्रित होकर कहा—सम्राट की अनुपस्थिति में इस संकट काल में इस प्रजा का क्या होगा?

सम्राट ने पुत्र की ओर इशारे करते हुये कहा—यह तुम्हारे सुख-दुःख का साथी होगा, तथा उसी समय सारा राज्य खजाना खोल दिया और जनता को यथायोग्य सारी राज्य संपत्ति वितरित कर दी।

मंत्री ने इशारा किया, महाराज! इस राजकुमार को भी तो अपने खर्च के लिये कुछ छोड़ दीजिये। सम्राट ने उत्तर दिया—

पुत्र सुपुत्र तो क्यों धन संचय, फिर ऐश्वर्य कमा लेगा?
पुत्र कुपुत्र तो क्यों धन संचय, क्षण में सभी मिटा देगा?

धर्मात्मा की सच्ची संपदा

जिससे पापबंध और दुर्गति हो, वह संपदा नहीं है परंतु विपदा है; सच्ची संपदा तो वह है कि जिससे आत्मा बंधन से छूटकर केवलज्ञान एवं परमानंदरूप मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करे।

कोई जीव बाह्य संपदा का ही अनुरागी होकर पाप प्रवृत्ति में ही वर्तता हो और आत्महित को भूल रहा हो तो उसे समझाने के लिये रत्नकरण्डश्रावकाचार में स्वामी समंतभद्र कहते हैं कि—

यदि पापनिरोधोऽन्य संपदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्य संपदा किं प्रयोजनम्॥२७॥

सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि यदि मेरे ज्ञानावरणादिरूप अशुभ पाप प्रकृतियों का आस्त्रव रुक गया है अर्थात् मेरी चैतन्य संपदा मुझे प्रगटी है तो उससे अन्य दूसरी बाह्य संपदा से मुझे क्या प्रयोजन है ? और यदि पाप के आस्त्रवपूर्वक बाह्य संपदा आती हो तो ऐसी संपदा से मुझे क्या प्रयोजन है ?

यदि इस जीव को त्याग-संयमरूप प्रवृत्ति द्वारा पापास्त्रव रुक गया है और अन्य इंद्रिय विषयों की संपदा या राज्य ऐश्वर्य संपदा आदि नहीं है—तो उस संपदा का प्रयोजन ही क्या है ? आस्त्रव के रुकने से तो निर्वाण संपदा या स्वर्ग लोक की अहमिन्द्रादि संपदा प्राप्त होती है, तो फिर धूल-मिट्टी जैसी, क्लेश से भरपूर क्षणभंगुर संपदा का क्या काम है ? पापास्त्रव के अभाव से तो निबंध नामक संपदा प्रगट होती है, वह महान विभूति ही महान लक्ष्मी है। और यदि अन्याय-अनीति-कपट-छल-चोरी इत्यादि के द्वारा निरंतर पापास्त्रवपूर्वक धन संपदा प्राप्त होती हो तो ऐसी संपदा का मुझे क्या काम है ?—ऐसे पाप से तो जीव मरकर अंतर्मुहूर्त में नरक में नारकी रूप से उत्पन्न होता है। सम्यग्दृष्टि को तो पापकर्म के आस्त्रव का बहुत भय है और पाप का आस्त्रव रुके, उसे वह महान संपदा का लाभ मानता है। इस संसार की संपदा को तो पराधीन, दु:खदाता जानकर उसकी लालसा नहीं करता; और कदाचित् लाभांतराय—भोगांतराय कर्म के क्षयोपशम से लक्ष्मी प्राप्त हो तो उसे पराधीन, विनाशीक, बंधनकर्ता जानकर उसमें लिप्त नहीं होते।

चैतन्य की प्रभुता का प्रवाह

इस भगवान चैतन्य-समुद्र में से अनंत गुण की प्रभुता का प्रवाह बहता है। जिसप्रकार आकाश वह क्षेत्रस्वभावी वस्तु है, उसके अस्तित्व का विचार करें तो उसके अस्तित्व का कहीं अंत नहीं है... इस लोक के पश्चात् अनंत अलोक... उसका कहीं अंत नहीं है, आकाश के अपार अस्तित्व का कहीं अंत नहीं है... अनंत-अनंत प्रदेश... जहाँ देखो वहाँ आकाश है, है और है। उसीप्रकार आत्मा का स्वभाव अनंत गुणों के प्रवाह से परिपूर्ण अस्तित्वरूप है। एक-एक गुण में अनंत-अनंत पर्यायोंरूप परिणमित होने की शक्ति है; उसका कहीं अंत नहीं है; उसकी प्रभुता का सामर्थ्य अपार है। अनंत गुण की प्रभुता के प्रवाह से आत्मा परिपूर्ण है... पर्याय में प्रतिसमय प्रभुता का प्रवाह अनंत काल तक बहता रहे, तथापि उसकी प्रभुता कम न हो—ऐसी शक्ति आत्मा में है। ऐसे आत्मा को प्रतीति में ले, तब श्रद्धा सच्ची हो। जिसप्रकार क्षेत्र से आकाश का माप नहीं है, उसीप्रकार प्रभुता से आत्मा का माप नहीं है... आत्मा में अमाप प्रभुता भरी है। पानी का विशाल प्रवाह देखने से उसकी विशालता की महिमा आती है, परंतु अंतर में अनंतगुण का चैतन्य प्रवाह बह रहा है, उसकी महिमा भासित नहीं होती। अनंत गुण की प्रभुता की महिमा भूलकर संयोग की महिमा आ जाये, उसे आत्मा के सच्चे अस्तित्व की खबर नहीं है। एक क्षण में अनंत-अमाप आकाश का पता लगा ले, ऐसी चैतन्य की एक पर्याय की शक्ति है, और ऐसी अनंत चैतन्य पर्यायों का प्रवाह आत्मा में से बहता है—ऐसे स्वभाव सामर्थ्य से आत्मा परिपूर्ण है; उसकी प्रतीति करने से परम आनंद प्रगट होता है और उसमें लीन होने से केवलज्ञान का प्रवाह बहने लगता है। राग की शक्ति नहीं है कि वह ऐसे स्वभाव को प्रतीति में ले सके।

अहा, यह तो भगवान आत्मा की 'भागवत' है; चैतन्य भगवान की महिमा की कथा है। नियमसार आदि को 'भागवत शास्त्र' कहा है; वे भगवान संतों के कहे हुए तथा आत्मा का स्वरूप प्रकाशित करनेवाले हैं। भगवान, यह तेरे आत्मा का अंतर वैभव संतों ने बतलाया है।

(—भाद्रपद शुक्ला १३ के प्रवचन से)

श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित

योगसार के मूल प्राकृत गाथा का अर्थ

अर्थ—जो निर्मल ध्यान में स्थित हैं, और जिन्होंने कर्म-मल को भस्म कर परमात्मपद को प्राप्त कर लिया है, उन परमात्माओं को नमस्कार करके ॥१ ॥

जिसने चार घातियाकर्मों का नाश कर अनंत चतुष्ट को प्रकट किया है, उस जिनेन्द्र के चरणों को नमस्कार कर, यहाँ अभीष्ट काव्य को कहता हूँ ॥२ ॥

जो संसार से भयभीत हैं और मोक्ष के लिये जिनकी लालसा है, उनके संबोधन के लिये एकाग्र चित्त से मैंने इन दोहों की रचना की है ॥३ ॥

काल अनादि है, जीव अनादि है, और भवसागर अनंत है। उसमें मिथ्यादर्शन से मोहित जीव ने अपनी भूल से दु:ख ही दु:ख पाया है, सुख नहीं पाया ॥४ ॥

हे जीव ! यदि तू चतुर्गति के भ्रमण से भयभीत है, तो परभाव का त्याग कर और निर्मल आत्मा का ध्यान कर, जिससे तू मोक्ष-सुख को प्राप्त कर सके ॥५ ॥

परमात्मा, अंतरात्मा और बहिरात्मा इस तरह आत्मा के तीन प्रकार समझने चाहिये। हे जीव ! अन्तरात्मासहित होकर परमात्मा का ध्यान कर, और भ्रांति रहित होकर बहिरात्मा को त्याग ॥६ ॥

जो मिथ्यादर्शन से मोहित जीव परमात्मा को नहीं समझता, उसे जिन भगवान ने बहिरात्मा कहा है; वह जीव पुन: पुन: संसार में परिभ्रमण करता है ॥७ ॥

जो परमात्मा को समझता है, और जो परभाव का त्याग करता है, उसे पंडित-आत्मा (अंतरात्मा) समझो। वह जीव संसार को छोड़ देता है ॥८ ॥

जो निर्मल, निष्कल, शुद्ध, जिन, विष्णु, बुद्ध, शिव और शांत है, उसे जिन भगवान ने परमात्मा कहा है—इसमें कुछ भी भ्रांति न करनी चाहिये ॥९ ॥

देह आदि जो पदार्थ पर कहे गये हैं, उन पदार्थों को ही जो आत्मा समझता है, उसे जिन भगवान ने बहिरात्मा कहा है। वह जीव संसार में फिर फिर से परिभ्रमण करता है ॥१० ॥

देह आदि जो पदार्थ पर कहे गये हैं, वे पदार्थ आत्मा नहीं होते—यह जानकर, हे जीव ! तू आत्मा को आत्मा पहिचान ॥११ ॥

हे जीव! यदि तू आत्मा को आत्मा समझेगा, तो निर्वाण प्राप्त करेगा। तथा यदि तू पर पदार्थों को आत्मा मानेगा, तो तू संसार में परिभ्रमण करेगा ॥१२॥

हे आत्मन्! यदि तू इच्छा रहित होकर सम्यक्रत्नत्रयरूपी तप करे और आत्मा को समझे, तो तू शीघ्र ही परमगति को पा जाये, और तू निश्चय से फिर संसार में न आवे ॥१३॥

परिणाम से ही जीव को बंध कहा है और परिणाम से ही मोक्ष कहा है—यह समझकर, हे जीव! तू निश्चय से उन भावों को जान ॥१४॥

हे जीव! यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और सब पुण्य ही पुण्य करता रहेगा, तो भी तू सिद्धसुख को नहीं पा सकता, किंतु पुनः पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा ॥१५॥

हे योगिन्! एक परम आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है, अन्य कुछ भी मोक्ष का कारण नहीं, यह तू निश्चय समझ ॥१६॥

मार्गणा और गुणस्थान का व्यवहार से ही उपदेश किया गया है। निश्चयनय से तो तू आत्मा को ही (सब कुछ) समझ; जिससे तू परमेष्ठी-पद को प्राप्त कर सके ॥१७॥

जो गृहस्थी के धन्धे में रहते हुए भी हेयाहेय को समझते हैं और जिन भगवान का निरंतर ध्यान करते हैं, वे शीघ्र ही निर्वाण को पाते हैं ॥१८॥

शुद्ध मन से जिन का स्मरण करो, जिन का चिंतवन करो, और जिन का ध्यान करो; उनका ध्यान करने से एक क्षण भर में परमपद प्राप्त हो जाता है ॥१९॥

हे योगिन्! मोक्ष प्राप्त करने में शुद्धात्मा और जिन भगवान में कुछ भी भेद न समझो—यह निश्चय मानो ॥२०॥

जो जिन भगवान है, वही आत्मा है—यही सिद्धांत का सार समझो। इसे समझकर, हे योगीजनो! मायाचार को छोड़ो ॥२१॥

जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है—यह समझकर हे योगिन्! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो ॥२२॥

जो शुद्ध प्रदेशों से पूर्ण लोकाकाश-प्रमाण है, उसे सदा आत्मा समझो, और शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करो ॥२३॥

जो आत्मस्वभाव को निश्चयनय से लोक-प्रमाण और व्यवहारनय से स्वशरीर-प्रमाण समझता है, वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है ॥२४॥

यह जीव अनादि अनंत काल तक चौरासी लाख योनियों में भटका है, परंतु इसने सम्यक्त्व नहीं पाया—हे जीव! यह निःसंदेह समझ ॥२५॥

यदि मोक्ष पाने की इच्छा करते हो, तो निरंतर ही आत्मा को शुद्ध, सचेतन, बुद्ध, जिन, और केवलज्ञान-स्वभावमय समझो ॥२६॥

हे जीव! जब तक तू निर्मल आत्मस्वभाव की भावना नहीं करता, तब तक मोक्ष नहीं पा सकता। अब जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ जा ॥२७॥

जो तीनों लोकों के ध्येय जिन भगवान हैं, निश्चय से उन्हें ही आत्मा कहा है—यह कथन निश्चयनय से है। इसमें भ्रांति न करनी चाहिये ॥२८॥

जब तक एक परम शुद्ध पवित्र भाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक मूढ़ लोगों के जो व्रत, तप, संयम और मूलगुण हैं, उन्हें मोक्ष का कारण नहीं कहा जाता ॥२९॥

जिनेन्द्रदेव का कथन है कि यदि व्रत और संयम से युक्त होकर जीव निर्मल आत्मा को पहिचानता है, तो वह शीघ्र ही सिद्धि-सुख को पाता है ॥३०॥

जब तक जीव को एक परम शुद्ध पवित्र भाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक व्रत, तप, संयम और शील ये सब कुछ भी कार्यकारी नहीं होते ॥३१॥

पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है, और पाप से नरक में जाता है। जो इन दोनों को (पुण्य और पाप को) छोड़कर आत्मा को जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥३२॥

व्रत, तप, संयम और शील, ये सब व्यवहार से ही माने जाते हैं। मोक्ष का कारण तो एक ही समझना चाहिये, और वही तीनों लोकों का सार है ॥३३॥

जो आत्मा को आत्मभाव से जानता है और जो परभाव को छोड़ देता है, वह शिवपुरी को जाता है—ऐसा जिनवर ने कहा है ॥३४॥

जिन भगवान ने जो छह द्रव्य, नौ पदार्थ और (सात) तत्त्व कहे हैं, वे व्यवहारनय से कहे हैं, उनका प्रयत्नशील होकर ज्ञान प्राप्त करो ॥३५॥

जितने भी पदार्थ हैं, वे सब अचेतन हैं; चेतन तो केवल एक जीव ही है, और वही सारभूत है। उसको जानकर परम मुनि शीघ्र ही संसार से पार होता है ॥३६॥

सर्व व्यवहार को त्याग कर यदि तू निर्मल आत्मा को जानेगा, तो तू संसार से शीघ्र ही पार होगा—ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ॥३७॥

जो जीवाजीव के भेद को जानता है, वही (सब कुछ) जानता है; तथा हे योगिन! इसी को योगीजनों ने मोक्ष का कारण कहा है ॥३८॥

हे जीव! यदि तू मोक्ष पाने की इच्छा करता है, तो तू केवलज्ञान-स्वभाव आत्मा को पहिचान, ऐसा योगियों ने कहा है ॥३९॥

कौन तो समाधि करे, कौन अर्चन-पूजन करे, कौन स्पर्शास्पर्श करके वंचना करे, कौन किसके साथ मैत्री करे, और कौन किसके साथ कलह करे—जहाँ कहीं देखो वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होती है ॥४०॥

जब तक जीव गुरु-प्रसाद से आत्मदेव को नहीं जानता, तभी तक वह कुतीर्थों में भ्रमण करता है, और तभी तक वह धूर्तता करता है ॥४१॥

श्रुतकेवली ने कहा है कि तीर्थों में देवालयों में देव नहीं हैं, जिनदेव तो देह-देवालय में विराजमान हैं—इसे निश्चित समझो ॥४२॥

जिनदेव देह-देवालय में विराजमान हैं; परंतु जीव (ईंट-पत्थरों के) देवालयों में उनके दर्शन करता है—यह मुझे कितना हास्यास्पद मालूम होता है। यह बात ऐसी ही है, जैसे कोई मनुष्य सिद्ध (-मुक्त) हो जाने पर भिक्षा के लिये भ्रमण करे ॥४३॥

हे मूढ़! देव किसी देवालय में विराजमान नहीं हैं, इसी तरह किसी पत्थर, लेप अथवा चित्र में भी देव विराजमान नहीं। जिनदेव तो देह-देवालय में रहते हैं—इस बात को तू समचित्त से समझ ॥४४॥

सब कोई कहते हैं कि जिनदेव तीर्थ में और देवालय में विद्यमान हैं। परंतु जो जिनदेव को देह-देवालय में विराजमान समझता है, ऐसा पंडित कोई विरला ही होता है ॥४५॥

हे जीव! यदि तू जरा-मरण से भयभीत है तो धर्म कर, धर्मरसायन का पान कर; जिससे तू अजर-अमर हो सके ॥४६॥

पढ़ लेने से धर्म नहीं होता; पुस्तक और पिच्छी से भी धर्म नहीं होता; किसी मठ में रहने से भी धर्म नहीं होता; तथा केशलोंच करने से भी धर्म नहीं कहा जाता ॥४७॥

जो राग और द्वेष दोनों को छोड़कर निज आत्मा में वास करना है, उसे ही जिनेन्द्रदेव ने धर्म कहा है। वह धर्म पंचमगति (मोक्ष) को ले जाता है ॥४८॥

आयु गल जाती है, पर मन नहीं गलता, और न आशा ही गलती है। मोह स्फुरित होता

है, परंतु आत्महित का स्फुरण नहीं होता—इस तरह जीव संसार में भ्रमण किया करता है ॥४९॥

जिस तरह मन विषयों में रमण करता है, उस तरह यदि वह आत्मा को जानने में रमण करे, तो हे योगीजनों! योगी कहते हैं कि जीव शीघ्र ही निर्वाण पा जाये ॥५०॥

हे जीव, जैसे नरकवास सैकड़ों छिद्रों से जर्जरित है, उसी तरह शरीर को भी (मल, मूत्र आदि से) जर्जरित समझ। अतएव निर्मल आत्मा की भावना कर, तो शीघ्र ही संसार से पार होगा ॥५१॥

सब लोग संसार में अपने-अपने धंधे में फँसे हुए हैं, और अपनी आत्मा को नहीं पहिचानते। निश्चय से इसी कारण ये जीव निर्वाण को नहीं पाते, यह स्पष्ट है ॥५२॥

जो शास्त्रों को तो पढ़ लेते हैं; परंतु आत्मा को नहीं जानते, वे लोग भी जड़ ही हैं। तथा निश्चय से इसी कारण ये जीव निर्वाण को नहीं पाते यह स्पष्ट है ॥५३॥

यदि पंडित, मन और इंद्रियों से छुटकारा पा जाये, तो उसे किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं। यदि राग का प्रवाह रुक जाये, तो वह (आत्मभाव) सहज ही उत्पन्न हो जाता है ॥५४॥

पुद्गल भिन्न है और जीव भिन्न है, तथा अन्य सब व्यवहार भिन्न है। अतएव पुद्गल का आश्रय छोड़ और जीव को ग्रहण कर—इससे तू शीघ्र ही संसार से पार होगा ॥५५॥

जो जीव को स्पष्टरूप से न समझते हैं, और जो उसे न पहिचानते हैं, वे संसार में कभी छुटकारा नहीं पाते—ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥५६॥

रत्न, दीप, सूर्य, दही, दूध, घी, पाषाण, सोना, चाँदी, स्फटिकमणि और अग्नि ये (जीव के) नौ दृष्टांत जानने चाहिये ॥५७॥

जो शून्य आकाश की तरह देह आदि को पर समझता है, वह शीघ्र ही परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, और वह केवल प्रकाश करता है ॥५८॥

हे जीव! जैसे आकाश शुद्ध है, वैसे ही आत्मा भी शुद्ध कही गई है। दोनों में अंतर केवल इतना ही है कि आकाश जड़ है और आत्मा चैतन्यलक्षण से युक्त है ॥५९॥

जो नासिका पर दृष्टि रखकर अभ्यंतर में अशरीर को (आत्मा को) देखते हैं, वे इस लज्जाजनक जन्म को फिर से धारण नहीं करते, और वे माता के दूध का पान नहीं करते ॥६०॥

अशरीर (आत्मा) को ही सुंदर शरीर समझो, और इस शरीर को जड़ मानो; मिथ्या-मोह का त्याग करो और अपने शरीर को भी अपना मत मानो ॥६१॥

आत्मा को आत्मा से जानने में यहाँ कौन सा फल नहीं मिलता! और तो क्या इससे केवलज्ञान भी हो जाता है, और जीव को शाश्वत् सुख की प्राप्ति होती है ॥६२॥

जो मुनि परभाव का त्याग कर अपनी आत्मा से अपनी आत्मा को पहिचानते हैं, वे केवलज्ञान प्राप्त कर संसार से मुक्त हो जाते हैं ॥६३॥

उन भगवान पंडितों को धन्य हैं, जो परभाव का त्याग करते हैं, और जो लोकालोक-प्रकाशक निर्मल आत्मा को जानते हैं ॥६४॥

गृहस्थ हो या मुनि हो, जो कोई भी निज आत्मा में वास करता है, वह शीघ्र ही सिद्धिसुख को पाता है, ऐसा जिन भगवान ने कहा है ॥६५॥

विरले पंडित लोग ही तत्त्वों को समझते हैं, विरले ही तत्त्वों का श्रवण करते हैं, विरले ही तत्त्वों का ध्यान करते हैं, और विरले जीव ही तत्त्वों को धारण करते हैं ॥६६॥

यह कुटुंब परिवार निश्चय से मेरा नहीं है, यह मात्र सुखदुःख का ही हेतु है—इसप्रकार विचार करने से शीघ्र ही संसार का नाश किया जा सकता है ॥६७॥

इन्द्र, फणीन्द्र, और नरेन्द्र भी जीवों को शरणभूत नहीं हो सकते; इस तरह अपने को शरणरहित जानकर उत्तम मुनि निज आत्मा से निज आत्मा को जानते हैं ॥६८॥

जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है और अकेला ही सुखदुःख का उपभोग करता है। वह नरक में भी अकेला ही जाता है और निर्वाण को भी वह अकेला ही प्राप्त करता है ॥६९॥

हे जीव! यदि तू अकेला ही है तो परभाव का त्याग कर और आत्मा का ध्यान कर, जिससे तू शीघ्र ही ज्ञानमय मोक्षसुख को प्राप्त कर सके ॥७०॥

जो पाप है, उसको जो पाप जानता है, यह तो सब कोई जानता है। परंतु जो पुण्य को भी पाप कहता है, ऐसा पंडित कोई विरला ही होता है ॥७१॥

हे पंडित! जैसे लोहे की साँकल को तू साँकल समझता है, उसी तरह तू सोने की साँकल को भी साँकल ही समझ। जो शुभ-अशुभ दोनों भावों का परित्याग कर देते हैं, निश्चय से वे ही ज्ञानी होते हैं ॥७२॥

हे जीव! जब तेरा मन निर्ग्रंथ हो गया तो तू भी निर्ग्रंथ हो गया; और जब तू निर्ग्रंथ हो गया, तो उससे मोक्षमार्ग मिल जाता है ॥७३॥

जैसे बड़ के वृक्ष में बीज स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही बीज में भी बड़वृक्ष रहता है। इसी तरह देह में भी उस देव को विराजमान समझो, जो तीनों लोकों में मुख्य है ॥७४॥

जो जिनदेव हैं, वह मैं हूँ, वही मैं हूँ—इसकी भ्रांतिरहित होकर भावना कर। हे योगिन! मोक्ष का कारण कोई अन्य मंत्र-तंत्र नहीं है ॥७५॥

दो, तीन, चार, पाँच, नौ, सात, छह, पाँच और चार गुण ये (परमात्मा के) लक्षण समझने चाहिये ॥७६॥

जो दो का (राग-द्वेष) परित्याग कर, दो गुणों से (सम्यग्ज्ञान-दर्शन) युक्त होकर आतमा में निवास करता है, वह शीघ्र ही निर्वाण पाता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥७७॥

जो तीन से (राग-द्वेष-मोह) रहित होकर तीन गुणों से (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) युक्त होता हुआ आत्मा में निवास करता है, वह शाश्वत सुख का पात्र होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ॥७८॥

हे जीव! जो चार कषायों और चार संज्ञा से रहित होकर चार गुणों से (अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य) सहित होता है, उसे तू आत्मा समझ; जिससे तू परम पवित्र हो सके ॥७९॥

जो दस से रहित, दस से सहित और दस गुणों से सहित है, उसे निश्चय से आत्मा कहा है ॥८०॥

आत्मा को ही दर्शन और ज्ञान समझो; आत्मा ही चारित्र है, और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्मा को ही मानो ॥८१॥

जो निज को और पर को जान लेता है, वह भ्रांतिरहित होकर पर का त्याग कर देता है। हे जीव! तू उसे ही संन्यास समझ—ऐसा केवलज्ञानी ने कहा है ॥८२॥

हे योगिन! रत्नत्रययुक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है, और वही मोक्ष का कारण है। अन्य कुछ मंत्र-तंत्र मोक्ष का कारण नहीं ॥८३॥

जिसके द्वारा देखा जाता है, वह दर्शन है; जो निर्मल महान आत्मा हैं, वह ज्ञान है, तथा आत्मा की जो पुनः-पुनः भावना की जाती है, वह पवित्र चारित्र है ॥८४॥

जहाँ आत्मा है, वहाँ समस्त गुण हैं—ऐसा केवलियों ने कहा है। इसलिये योगी लोग निश्चय से निर्मल आत्मा को पहिचानते हैं ॥८५॥

हे आत्मन्! तू एकाकी, इंद्रियरहित और मन-वचन-काय की *शुद्धि से आत्मा को जान; उससे तू शीघ्र ही मोक्षसिद्धि को प्राप्त करेगी ॥८६॥

[*निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में शुद्धि द्वारा]

यदि तू निश्चय से अपने को बद्ध, मुक्त समझेगा तो तू बँधेगा तथा यदि तू सहजस्वरूप में रमण करेगा तो शांत निर्वाण को पावेगा ॥८७॥

सम्यग्दृष्टि जीव कुगतियों में नहीं जाता। यदि कदाचित् वह जाता भी है तो इसमें सम्यक्त्व का दोष नहीं। वह पूर्वकृत कर्म का ही क्षय करता है ॥८८॥

जो *सर्व व्यवहार को छोड़कर आत्मस्वरूप में रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव है, और वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है ॥८९॥

[*प्रथम से ही उपादेय भूत की श्रद्धा में से सर्व पराश्रय व्यवहार की श्रद्धा छोड़ते हैं।]

जिसके सम्यक्त्व का प्राधान्य है, वही पंडित है और वही त्रिलोक में प्रधान है। वह जीव शाश्वत सुख के निधान केवलज्ञान को भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥९०॥

जहाँ अजर, अमर तथा गुणों की आगारभूत आत्मा स्थिर हो जाती है, वहाँ जीव कर्मों से बद्ध नहीं होता, और वहाँ पूर्व में संचित किये हुए कर्मों का ही नाश होता है ॥९१॥

जिस तरह कमलिनी का पत्र कभी भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी तरह यदि आत्मस्वभाव में रति हो, तो जीव कर्मों से लिप्त नहीं होता ॥९२॥

जो शम और सुख में लीन हुआ पंडित बारबार आत्मा को जानता है, वह निश्चय ही कर्मों का क्षयकर शीघ्र ही निर्वाण पाता है ॥९३॥

हे जीव! पुरुषाकार यह आत्मा पवित्र है, यह गुणों की राशि है और यह निर्मल तेज को स्फुरित करती हुई दिखाई देती है ॥९४॥

जो शुद्ध आत्मा को अशुचि शरीर से भिन्न समझता है, वह शाश्वत् सुख में लीन होकर समस्त शास्त्रों को जान जाता है ॥९५॥

जो न तो परमात्मा को जानता है, और न परभाव का त्याग ही करता है, वह भले ही समस्त शास्त्रों को जान जाये, परंतु वह मोक्षसुख को प्राप्त नहीं करता ॥९६॥

जो समस्त विकल्पों से रहित होकर परम समाधि को प्राप्त करते हैं, वे आनंद का अनुभव करते हैं, वह मोक्षसुख कहा जाता है ॥९७॥

हे बुध ! जिन भगवान के कहे हुए पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान को समझ; जिससे तू शीघ्र ही परम पवित्र हो सके ॥९८॥

समस्त जीव ज्ञानमय हैं, इसप्रकार जो समभाव है, उसे निश्चय से सामायिक समझो, ऐसा जिनभगवान ने कहा है ॥९९॥

राग और द्वेष इन दोनों को छोड़कर जो समभाव होता है, उसे निश्चय से सामायिक समझो ऐसा जिन भगवान ने कहा है ॥१००॥

हिंसादिक का त्याग कर जो आत्मा को स्थिर करता है, उसे दूसरा चारित्र (छेदोपस्थापना) समझो—यह पंचम गति को ले जानेवाला है ॥१०१॥

मिथ्यात्व आदि के परिहार से जो सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है, उसे परिहारविशुद्धि समझो, उससे जीव शीघ्र ही मोक्षसिद्धि को प्राप्त करता है ॥१०२॥

सूक्ष्म लोभ का नाश होने से जो सूक्ष्म परिणामों का अवशेष रह जाना है, वह सूक्ष्मचारित्र है; वह शाश्वत सुख का स्थान है ॥१०३॥

निश्चय से आत्मा ही अर्हत् है, वही निश्चय से सिद्ध है, और वही आचार्य है, और उसे ही उपाध्याय तथा मुनि समझना चाहिये ॥१०४॥

वही शिव है, वही शंकर है, वही विष्णु है, वही रुद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही अनंत है और सिद्ध भी उसे ही कहना चाहिये ॥१०५॥

इन लक्षणों से युक्त परम निष्कल देव जो देह में निवास करता है, उसमें और आत्मा कोई भी भेद नहीं है ॥१०६॥

जो सिद्ध हो चुके हैं, भविष्य में होंगे और वर्तमान में होते हैं, वे सब आत्मदर्शन से ही सिद्ध हुए हैं—यह भ्रांति रहित समझो ॥१०७॥

संसार के दु:खों से भयभीत ऐसे योगीन्दुदेव मुनि ने आत्मसंबोधन के लिये एकाग्र मन से इन दोहों की रचना की है ॥१०८॥

परमात्म भावना

[दो भाइयों का संवाद : अकलंक-निकलंक नाटक से]

(बड़ा भाई स्वाध्याय कर रहा है, वहाँ छोटा भाई आकर नमस्कार करके पूछता है:)

नमस्ते बड़े भैया! आप काहे की स्वाध्याय कर रहे हैं?

भाई, मैं 'परमात्म प्रकाश' की स्वाध्याय करता हूँ।

वाह! परमात्मा का स्वरूप समझने तथा भेदज्ञान की भावना के लिये यह बहुत ही सुंदर शास्त्र है। भाई, मुझे भी इसमें से कुछ सुनाइये।

सुन! इस शास्त्र के अंत में संपूर्ण शास्त्र के साररूप ऐसी भावना करने को कहा है:—

''सहज शुद्ध ज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं निजनिरंजन शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसंजात वीतरागसहजानंदरूप सुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं; रागद्वेषमोहादि... सर्वे विभावपरिणामरहित शून्योऽहं, जगत्त्रये कालत्रयेपि मनोवचनकायैः कृतकारितनुमतेश्च शुद्धनिश्चयनयेन; तथा सर्वेऽपि जीवाः, इति भावना निरंतर कर्त्तव्येति।''

'मैं सहज शुद्ध ज्ञानानंद एक स्वभाव हूँ, मैं निर्विकल्प हूँ, मैं उदासीन हूँ; निज निरंजन शुद्धात्मा के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक ऐसी जो निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न वीतराग सहजानंदरूप जो सुख, उसकी अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण है, ऐसे स्वसंवेदनज्ञान से स्वसंवेद्य-गम्य-प्राप्य-भरितावस्थ हूँ; राग-द्वेष-मोहादि... सर्व विभावपरिणाम से रहित शून्य हूँ; तीन लोक में तथा तीनों काल में, मन से-वचन से-काय से कृत-कारित-अनुमोदना से शुद्धनिश्चयनय से मैं ऐसा ही हूँ, तथा सर्व जीव भी ऐसे ही हैं—इसप्रकार निरंतर भावना कर्त्तव्य है।'

छोटा भाई—अहो, ऐसी परमात्म भावना में लीन संतों को कितना आनंद आता होगा?

बड़ा भाई—अहा, उसकी तो बात ही क्या! जहाँ सम्यग्दर्शन का आनंद भी सिद्ध समान अपूर्व है, जिसे आत्मा के सिवा अन्य किसी की उपमा लागू नहीं हो सकती, तब मुनिदशा के आनंद की तो बात ही क्या!

छोटा भाई—बलिहारी है अपने जैनधर्म की—कि जिसके सेवन से ऐसे अपूर्व आनंद की प्राप्ति होती है।

बड़ा भाई—बात तो ऐसी है; वास्तव में यह एक जैनशासन ही जगत के जीवों को शरणभूत है।

* जैनं जयतु शासनम् *

विश्व प्रेम की दृष्टि में.....!

प्रेषक : महेन्द्र जैन 'प्रेम' (आयु १५ वर्ष)

'जब आपकी पत्नी बिल्कुल पागल है, तो आप दूसरा विवाह संस्कार क्यों नहीं करा लेते ?' एक मित्र ने कहा। 'यदि मेरे भाग्य में सांसारिक सुख लिखा होता तो मेरी यह पत्नी भी क्यों पागल निकलती ?' वैरिस्टर चंपतराय ने उत्तर दिया। 'कम से कम संतान के लिये तो संबंध करा लेना आवश्यक है।' विश्व व्यापी प्रेम को एक संतान में सीमित करके क्या यह काम संसार की दृष्टि में न्याययुक्त होगा ? वे सभी बच्चे मेरी संतान समझो।

मित्र महोदय उत्तर सुनकर अवाक रह गये।

यह मेरा है यह तेरा, ये क्षुद्र भावनायें अनुदार।
विश्व प्रेम की दृष्टि में, यह सारा विश्व एक परिवार॥

परम वैराग्यरूपी मार्ग

[श्री पंचास्तिकाय-प्रवचन से... भाद्रपद शुक्ला-१५]

जैनधर्म वह वीतराग धर्म है; जैनमार्ग वह वीतरागमार्ग है; जैनमार्ग कहो या मुक्ति का मार्ग कहो—वह वीतरागभाव में ही समा जाता है; इसलिये परम वैराग्यरूपी वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है; वही मुमुक्षु का कर्तव्य है। ऐसे सम्यक्मार्ग का निर्णय करके पश्चात् स्व-पर आत्मा में उसका उद्योत करना ही सच्ची मार्ग प्रभावना है। कुन्दकुन्द स्वामी आदि संतों ने ऐसी मार्ग प्रभावना करके जगत पर महान उपकार किया है।

'मार्ग' अर्थात् परमवैराग्य की ओर ढलती हुई पारमेश्वरी आज्ञा। देखो, पराश्रय की ओर या राग की ओर ढलने की आज्ञा परमेश्वर की नहीं है। परमेश्वर की आज्ञा तो परम वैराग्य की ही है; इसलिये स्वोन्मुखतापूर्वक वीतरागभाव हो, वही जिनशासन में भगवान की आज्ञा है, तथा वही मोक्ष का मार्ग है।

ऐसा मार्ग जानकर उसकी प्रसिद्धि करना और अपनी पर्याय में उत्कृष्टरूप से वह प्रगट करना, उसका नाम 'मार्ग-प्रभावना' है। कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि ऐसी मार्ग-प्रभावना के हेतु मैंने यह सूत्र कहा है।

देखो, भगवान के मार्ग का उद्योत वीतरागभाव द्वारा ही होता है, और उसी में भगवान की आज्ञा है। उपदेश में भी वीतरागी तात्पर्य ही होता है और अंतर के अभिप्राय में भी वीतरागभाव का ही तात्पर्य होता है, अंशमात्र भी राग के पोषण का अभिप्राय नहीं होता।—ऐसा जिनमार्ग है। इससे विरुद्ध मार्ग माने, राग को मार्ग माने, तो वह जीव वीतरागी जिनमार्ग की प्रभावना कैसे कर सकेगा? उसे मार्ग की खबर नहीं है, उसे भगवान की आज्ञा की खबर नहीं है; परम वैराग्य परिणति उसे नहीं होती। मार्ग के निर्णय में ही जहाँ भूल हो, वहाँ मार्ग का उद्योत कहाँ से करे? प्रथम सम्यक् मार्ग का निर्णय करना चाहिये।

अहो, मार्ग ते स्वाश्रित है, मार्ग पराश्रित नहीं है।—ऐसा मार्ग जगत में भी प्रसिद्ध हो—ऐसे अनुरागपूर्वक कुन्दकुन्दस्वामी ने इस शास्त्र की रचना की है। नियमसार में भी वे कहते हैं कि शुद्ध रत्नत्रयरूप जो नियम है, वह मार्ग है और वह मार्ग पर से अत्यंत निरपेक्ष

है—उसमें पर का किंचित् आश्रय नहीं है; अकेले स्वाश्रय से ही रत्नत्रयमार्ग है और वही नियम से कर्तव्य है। बीच में राग आ पड़ता है, परंतु राग, वह कहीं मुमुक्षु का कर्तव्य नहीं है। राग कोई परम वैराग्य परिणति नहीं है, वह तो पर की ओर ढलती हुई परिणति है। अरे, ऐसा सुंदर स्पष्ट मार्ग! उसका एकबार तो निर्णय करो।

अहा, चैतन्यवस्तु ज्ञायकभाव.. उसमें वाणी नहीं है, विकल्प नहीं है। ऐसी चैतन्यवस्तु जो वीतरागरस से भरपूर है, उसके आश्रय से वीतरागी चैतन्य प्रवाह बहता है, वही मार्ग है। ऐसे मार्ग का उद्योग हो अर्थात् अपनी पर्याय में वह प्रगटे और जगत में भी उसकी प्रसिद्धि हो—उसका नाम मार्ग प्रभावना है। ऐसी मार्ग प्रभावना के बारंबार मंथन से इस शास्त्र की रचना हुई है... बाह्य में यह सूत्र रचे गये हैं और अंतर में वीतरागभाव की रचना हुई है। ऐसे वीतरागीभाव की रचना, वह कार्य है। आचार्यदेव विकल्प तोड़कर स्वरूप में स्थिर हुए, वहाँ वीतरागभावरूप परम नैष्कर्म्यदशा हुई अर्थात् कृतकृत्यता हुई; करने योग्य ऐसा जो वीतरागभावरूप कार्य, वह उन्होंने कर लिया। अहा, यह वीतरागभाव परमशांतिरूप विश्रांतभाव है। राग में तो कुछ क्लेश था, उसमें परिणति को विश्रांति नहीं थी। उस राग को तोड़कर स्वरूप में स्थिर हुए, वहाँ परिणति विश्रांति को प्राप्त हुई। टीकाकार श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि—'अहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसी दशा को प्राप्त हुए—ऐसी हम श्रद्धा करते हैं।' देखो, यह निर्णय की शक्ति! अपने से एक हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य हुए हैं, उनकी दशा को पहिचानकर हम प्रतीति करते हैं कि वे स्वरूप में विश्रांत हुए थे... शुद्धोपयोग में स्थित हुए थे और कृतकृत्य हुए थे।

मार्ग-प्रभावक वीतरागी संतों को नमस्कार हो!

आध्यात्मिक-पद

[राग-मल्हार : रचयिता - कवि श्री भागचंदजी]

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुष भव पायो।
लोचन रहित मनुष के कर में, ज्यों बटेर खग आयो॥ अरे हो० ॥१॥
सो तू खोवत विषयन मांहीं धम नहीं चित लायो॥ अरे हो० ॥२॥
'भागचंद' उपदेश मान अब, जो श्रीगुरु फरमायो॥अरे हो० ॥३॥

अचिंत्य चैतन्यरत्न

[परमात्मप्रकाश-प्रवचनों से]

अरे, संसार में यह दुःख! यह अशांति!! इसमें से तुझे बाहर निकलना हो तो, हे जीव! संत तुझे यह एक मंत्र देते हैं कि तेरा आत्मा शुद्ध परमात्मा है, उसकी रुचि करके उसी का रटन कर... जगत में कहीं सुख हो तो वह शुद्धात्मा में ही है। अहा, चैतन्यरत्न के इस अचिंत्य प्रभाव को रत्नत्रय ही झेल सकता है... राग उसे नहीं झेल सकता।

यहाँ मोक्षार्थी को क्या उपादेय है? कैसे स्वभाव का उसे चिंतन करना चाहिये—यह बात समझाते हैं। हे जीव! ज्ञानमय आत्मा के अतिरिक्त जो अन्य परभाव हैं, उन सबको छोड़कर, तू अपने शुद्धात्मस्वभाव का चिंतन कर। आत्मा केवलज्ञानादि अनंत गुण की राशि है, चैतन्यपुंज है, उसके गुण कभी उससे पृथक् नहीं होते। परंतु रागादि परभाव कहीं तेरे स्वभाव की वस्तु नहीं है, वे स्वभाव में से उत्पन्न भाव नहीं हैं परंतु परलक्ष से उत्पन्न परभाव हैं; उन सर्व परभावों को तू छोड़। प्रथम तो 'मैं ज्ञानमय हूँ और यह परभाव मैं नहीं हूँ'—इसप्रकार श्रद्धा एवं ज्ञान में से उन्हें छोड़ दे; पश्चात् उसी ज्ञानमय स्वभाव को उपादेय करके उसे ध्यान में ध्या। उसमें एकाग्र होकर उसका चिंतवन करने से समस्त परभाव छूट जाते हैं और चारित्रदशा प्रगट होती है।

यहाँ तो भेदज्ञान के लिये नियम बतलाते हैं कि विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभाव से विरुद्ध जो भी भाव हैं, उन सर्व को जीव के स्वभाव से पृथक् जानो। 'मैं तो शुद्ध चिन्मयभाव ही हूँ; इसके अतिरिक्त जो बंध के हेतुभूत ऐसे रागादिभाव हैं, वह मैं नहीं हूँ'—ऐसे भेदज्ञान के सिद्धांत का सेवन मुमुक्षु करते हैं। चैतन्य की भूमि में से तो आनंद की शीतल फुहारें प्रगट होती हैं, उसमें से राग के अंकुर नहीं निकलते। राग तो आस्रवतत्त्व है, और मोक्षमार्ग संवर-निर्जरारूप है, आस्रवतत्त्व में तो संवर-निर्जरा कैसे आये? चैतन्यस्वभाव को उपादेय करने से संवर-निर्जरा एवं मोक्षतत्त्व प्रगट होता है; आस्रव-बंध या पुण्य-पाप नष्ट होते हैं। इसलिये स्वभाव के अवलंबन से जिसका नाश होता है, वह मेरा स्वभाव नहीं है; वे परभाव मुझे आदरणीय नहीं हैं मुझे तो श्रद्धा-ज्ञान-ध्यान में सर्वत्र एक अपना ज्ञानस्वभाव ही आदरणीय है; इससे विरुद्ध अन्य

किसी भाव को आदरणीय माने, उसे शुद्धात्मा का ध्यान नहीं होता। सम्यक्त्व की रीति यह है कि ऐसे शुद्धात्मा को ध्यान में ध्याकर प्रतीति में लेना। पश्चात् सम्यक्चारित्र की रीति भी यह है कि ऐसे शुद्धात्मा को उपयोग में लेकर उसमें स्थिर होना। अभेद रत्नत्रयरूप जो मोक्षमार्ग, उसमें यह शुद्धात्मा ही उपादेय है। राग को उपादेय करके कोई जीव मोक्षमार्ग प्राप्त कर ले—ऐसा नहीं होता। अनंत चतुष्टरूप जो अरिहंतदशा वह 'कार्यसमयसार' है और उसके साधक जो अभेदरत्नत्रय वह 'कारणसमयसार' है; इसलिये केवलज्ञानरूप शुद्ध कार्य का कारण तो शुद्ध-अभेदरत्नत्रय ही है, दूसरा कोई उसका कारण नहीं है।

अहा, चैतन्य का अचिंत्य प्रभाव है, चैतन्यरत्न के उस अचिंत्य प्रभाव को अभेदरत्नत्रय ही झेल सकता है; चैतन्य के अचिंत्य प्रभाव को राग नहीं झेल सकता, राग द्वारा वह अनुभव में नहीं आता। इसलिये कहते हैं कि हे भव्य! तू तो जगतप्रकाशी चैतन्यसूर्य है, तेरे प्रताप में विकार कैसा? प्रकाश के पुंज में अंधकार कैसा? उसीप्रकार ज्ञानपुंज में अज्ञान कैसा और विकार कैसा? इसलिये सर्व परभावों से रहित ऐसे चैतन्य पुंज को जानकर, उसी का चिंतवन कर। आत्मचिंतनरूप शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समावेश हो जाता है, वह अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर है। ऐसे आत्मा को ध्यान द्वारा जो उपादेय करे, उसी को मोक्षमार्ग होता है; अन्यत्र कहीं ढूँढ़े उसे मोक्षमार्ग नहीं मिल सकता।

अरे जीव! अपना स्वभाव तो देख! जिसका नाम लेने से भी आनंद हो, उसके अनुभव की तो क्या बात? ऐसे महिमावंत अपने शुद्धात्मा को तू क्यों भूला है? अपने चैतन्यरत्न को तू विकार की धूल में क्यों घसीट रहा है? एक बार शुद्धदृष्टि द्वारा अपने भिन्न-निर्मल चैतन्यरत्न को देख तो उस चैतन्यरत्न में से मोक्षमार्ग की किरणें फूटेंगी; विकाररूपी मैल उस चैतन्यरत्न के भीतर प्रविष्ट नहीं हो गया है।

अतीन्द्रिय आनंद के साथ तन्मय ऐसे आत्मस्वभाव को जिसने उपादेय किया है, वह सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि कैसा है? कि अपने को अपने से ही जानता है। आत्मा, आत्मा द्वारा ही ज्ञात होता है; अन्य किसी के द्वारा ज्ञात नहीं होता। जिसने अंतर्मुख होकर शुद्धात्मा को उपादेय किया, वह जीव नियम से निकटभव्य है। भाई, तू पहले निर्णय कर कि सुख के लिये मुझे अपना शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, रागादि कोई परभाव मुझे उपादेय नहीं हैं।—इसप्रकार श्रद्धा और ज्ञान को निर्मल कर तो तुझे रागरहित स्वसंवेदन प्रगट हो।

विविध प्रकार के पुष्प

[चर्चा और प्रवचन से]

❁ सच्ची उदासीनता कब होती है ?

जगत से सच्ची उदासीनता कब होती है कि जब आत्मस्वभाव की परमप्रीति जागृत हो; जिसे आत्मस्वभाव की परमप्रीति जागृत नहीं हुई, उसे कहीं अन्यत्र पर में प्रीति अवश्य है, इसलिये उसे जगत से सच्ची उदासीनता नहीं होती। इसप्रकार सम्यग्ज्ञान के बिना सच्चा वैराग्य नहीं होता।

❁ या तो आत्मा या संसार...

जीव जो भी परिणाम करता है, वह या तो आत्मा के लिये होता है या संसार के लिये होता है; जिसे आत्मा का लक्ष है, आत्मा को साधने का जिसका उद्यम है, वह तो अपने परिणाम को आत्मा में लगाता है और जिसे आत्मा का लक्ष नहीं है, आत्मा को साधने का उद्यम नहीं है, अज्ञान के ही सेवन में वर्त रहा है, उसके तो सभी परिणाम संसार के हेतु ही हैं, फिर वे अशुभ हों या शुभ। अशुभ या शुभ—इन दोनों से पार तीसरे परिणाम जो कि आत्मस्वरूप को साधनेवाले हैं—उनकी तो अज्ञानी को खबर नहीं है; इसलिये वह तो राग का ही सेवन कर रहा है और राग का सेवन, वह तो संसार का कारण है। राग से पार आत्मस्वरूप क्या वस्तु है, उसे लक्षगत करके उसका सेवन करने से आत्मस्वरूप सधता है।

❁ सम्यग्दर्शन को साथी बनाओ

मिथ्यात्वरूपी जो महान दु:ख है, उससे छूटने के लिये हे जीव! तू शुद्ध सम्यक्त्व का निरंतर सेवन कर। सम्यक्त्व के बिना चाहे जितना पढ़े-लिखे, तथापि मोक्ष साधन नहीं होता। जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, वह ज्ञान-चारित्र की भी उग्र आराधना करके अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करेगा। सम्यग्दर्शन के बिना चाहे जितना ज्ञातृत्व या चाहे जितने क्रियाकाण्ड हों, तथापि उसे ज्ञान की या चारित्र आराधना नहीं होती। इसप्रकार सम्यक्त्व समान परम सुख का कारण जगत में दूसरा कोई नहीं है; इसलिये उस सम्यग्दर्शन को साथी बनाओ... वह मोक्ष का सच्चा साथी है। भक्तिपूर्वक उसकी आराधना करो। मिथ्यात्व का और मिथ्यात्वपोषक जीव का संग छोड़ो!

❁ दुनियाँ को छोड़कर....

दुनिया को साथ रखकर मोक्ष में नहीं जाना है, परंतु दुनिया को छोड़कर मोक्ष में जाना है, इसलिये हे मोक्षार्थी! दुनिया की स्पृहा छोड़कर आत्मलक्ष से तू मोक्षसाधन करना। यदि दुनिया की स्पृहा में रुकेगा तो आत्मलक्ष को चूक जायेगा...

❁ सम्यग्दृष्टि का योग

सम्यग्दृष्टि का योग यह है कि उसने अपने उपयोग को अंतर्मुख करके निजस्वरूप में लगाया है। उपयोग को निजस्वरूप में लगाना ही सच्चा योग है। जो उपयोग को पर में लगाये या राग में लगाये, उसे शुद्ध योग नहीं होता। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि को ही सम्यक्योग (उपयोग की सच्ची लीनता) होता है।

❁ तीव्र जिज्ञासा

आत्मा की ऐसी तीव्र जिज्ञासा जागृत होना चाहिये कि—जिसप्रकार तीव्र तृषातुर को ठंडा और मीठा पानी मिलने पर प्रेम से पीकर तृप्त हो जाता है; उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप के अमृत की प्राप्ति का उपाय सुनते ही प्रेमपूर्वक—उल्लास से ग्रहण करके, अंतर में डुबकी मारकर स्वानुभव जल का अमृत पान करके तृप्त हो जाये।

❁ स्वानुभव का स्वाद लेने की विधि

ज्ञानदृष्टि से अर्थात् राग से भिन्न दृष्टि से अंतर में देखने पर आत्मा रागरहित शुद्ध चैतन्य स्वादरूप से अनुभव में आता है। शुद्ध ज्ञान के द्वारा ऐसी स्वानुभूति होती है। ज्ञान का और राग का स्वाद अत्यंत भिन्न है। ज्ञान द्वारा उस स्वाद का भेद जानकर, ज्ञान स्वयं अपने स्वाद का वेदन करे, यही स्वानुभव का स्वाद लेने की विधि है। स्वानुभव का वह स्वाद परम आनंद से भरपूर, शांत, आकुलतारहित है। वह स्वाद जिसने चखा, वह सिद्धपद का साधक हुआ और उसी ने सिद्ध भगवान को भलीभाँति पहिचानकर अपने अंतर में स्थापित किया।

❁ धर्म और अधर्म

बंधभाव कहो या अधर्म कहो, और मोक्षभाव कहो या धर्म कहो। शुभ या अशुभ जो भी सराग परिणाम हैं, वह भावबंध हैं, इसलिये वह धर्म नहीं है, वह मोक्ष का साधन नहीं हैं। बंधभाव, मोक्ष का साधन कैसे होगा? मोक्ष का कारण तो मोह-राग-द्वेष रहित निर्मल परिणाम हैं, और वही धर्म है। भाई, तेरे आत्मपरिणामों में कौन से परिणाम धर्म हैं और कौन से परिणाम अधर्म हैं, उन्हें बराबर पहिचाने बिना तू धर्म किसप्रकार करेगा?

❁ निमित्त में मुख्य को अंतरंग और गौण को बहिरंग कहा है

जीव के योग का कम्पन और मोहादिरूप मलिनभाव, वह कर्म बंधन के निमित्तकारण हैं; परंतु उनमें मोहभाव, वह बंध का मुख्य कारण है; इसलिये उसे अंतरंग निमित्त कहा है और योग का कम्पन, वह गौण होने से उसे बहिरंग निमित्त कहा है। इसप्रकार निमित्त में अंतरंग और बहिरंग प्रकार कहे हैं। जिसप्रकार नियमसार की ५३वीं गाथा में सम्यक्त्व के निमित्त का कथन करते हुए कहा है कि—ज्ञानी का आत्मा, वह सम्यक्त्व का अंतरंग निमित्त है और उनकी वाणी बहिरंग निमित्त है। ज्ञानी के अंतरंग भावों की मुख्यता बतलाने के लिये उन्हें अंतरंग हेतु कहा है। चूँकि उपचारतः कहा है। वहाँ सम्यक्त्व के अर्थात् छुटकारे के निमित्त की बात है और यहाँ (पंचास्तिकाय गाथा १४८ में) कर्मबंध के निमित्त की बात है; उसमें भी नियमसार जैसी शैली से मोह भाव को मुख्य बतलाने के लिये उसे कर्मबंध का अंतरंग निमित्त कहा है, और योग के कम्पन को मुख्य न बतलाने के लिये उसे बहिरंग निमित्त कारण कहा है। योग तो मात्र कर्म के प्रदेश-प्रकृति का ही निमित्त है; इसलिये वह गौण है और कर्म की स्थिति तथा अनुभाग का निमित्त मोहादिभाव है, इसलिये वह मुख्य निमित्त है।

उत्तम सुझाव

अय आत्मन् ज्ञानामृतः, आनंद घन जी, आनंद घन जी।
स्व पर भाव पिछान, परिहर पर शरणम् परिहर पर शरणम्॥१॥
विश्व व्यवस्थित सत छै, कोई नहीं करै जी, कोई नहीं करै जी।
द्रव्य नियम सर होय, परिहर पर शरणम् परिहर पर शरणम्॥२॥
अपनाया स्व ना हुवे, कोई पर द्रव्य जी, कोई पर द्रव्य जी।
मिथ्या मोटो पाप, परिहर पर शरणम् परिहर पर शरणम्॥३॥
होना है सो होयसी, कुछ नहीं चलै जी, कुछ नहीं चलै जी।
यह दृढ़ निश्चय मान, परिहर पर शरणम् परिहर पर शरणम्॥४॥
ज्ञान ही नित अरिहंत है, चेतन सिद्ध जी, चेतन सिद्ध जी।
शुद्ध उपयोग सुझाव, परिहर पर शरणम् परिहर पर शरणम्॥५॥

धर्म प्रभावना के समाचार

इस साल दस लक्षण पर्यूषण पर्व में, विद्वान उपदेशकों के लिये अनेक गाँवों से माँग आई थी, किंतु निम्न जगह विद्वानगण पहुँच सके।

जयपुर— श्री बाबूभाई का भव्य स्वागत व प्रवचन

जयपुर—पर्यूषण पर्व के शुभावसर पर सोनगढ़ के आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री बाबूभाई व उनकी मंडली के यहाँ पधारने पर उनका भव्य स्वागत किया गया। उनके द्वारा नित्य प्रात: ६.०० बजे से बड़े मंदिर में सामूहिक पूजन, अभिषेक व ८.०० बजे से श्री बाबूभाई का शास्त्र प्रवचन होता था, फिर १०.०० बजे से उनका आदर्शनगर जैन मंदिर में प्रवचन तथा ३.०० बजे से बड़े मंदिरजी में धार्मिक शिक्षण शिविर चलता था। रात्रि को ७.०० बजे भजन भक्ति व नृत्य आदि विभिन्न मंदिरों में तथा ७.०० बजे से बड़े दीवानजी के मंदिर में पंडित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ व श्री बाबूभाई के शास्त्र प्रवचन व दस लक्षण धर्मों पर भाषण हुए। जिससे अच्छी धर्म प्रभावना हुई।

दिनांक ०१ अक्टूबर को क्षमावाणी पर्व श्री चंदनमलजी वैद्य, विद्युत मंत्री (राज. राज्य) की अध्यक्षता में महावीर पार्क में मनाया गया, जिसमें पंडित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, श्री बाबूभाई व श्री वैद्य के प्रभावशाली भाषण हुए। दिनांक २ अक्टूबर को बड़े मंदिरजी से श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में एक विशाल रथयात्रा जुलूस निकला जो अभूतपूर्व था। श्री बाबूभाई व मंडली, पंडित टोडरमल पुस्तकालय में पधारे। दिनांक ३ अक्टूबर को विदाई समारोह में उन्हें हार्दिक विदाई दी गई। डॉ० ताराचंद बक्सी

बम्बई मलाड ईस्ट— पर्व में अहमदाबाद से विद्वान वक्ता श्री चन्दुलालजी शिवलाल, आमंत्रण से पधारे, सर्वज्ञ वीतराग कथित अलौकिक पवित्र वाणी का साररूप आत्महित की बात-१०दिन तक प्रवचन तथा शंका समाधान द्वारा उत्तम प्रकार से समझाई गई। श्रीजी की रथयात्रा बड़े उत्साह से निकाली गई थी, हमेशा समूह पूजा, प्रवचन, भक्ति, प्रतिक्रमणादि कार्यक्रम का सभी ने बड़ी रुचि से लाभ लिया। लि० धीरजलाल भाईलाल उपप्रमुख श्री बम्बई उपनगर दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल।

बम्बई घाटकोपर— दशलक्षण पर्व बहुत उत्साह से मनाया गया। सोनगढ़ से श्री

चिमनलाल, ताराचंद ८ दिन आये। उनके द्वारा तत्त्वज्ञान का लाभ मिला, धर्म प्रभावना हुई पश्चात् १० दिन श्री जयंतीलाल भंसाली द्वारा प्रवचन आदि का कार्यक्रम रखा गया था तथा जैन शिक्षण वर्ग श्री जगजीवन बाउचंद दोशी सावरकुंडला ने चलाया था। सुगंध दशमी के दिन स्पेशल बसों के द्वारा दिगम्बर जैन मंदिरों में समूहरूप दर्शनार्थ जाने का कार्यक्रम था रथयात्रा, क्षमावाणी पर्व आदि का कार्यक्रम उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

—नवनीतराय दोशी, मानद मंत्री

बम्बई—मुम्बादेवी, १७३-७५—यहाँ श्री हिम्मतभाई छोटालाल शाह द्वारा १० दिन तक विशेष उल्लासपूर्वक अध्यात्म रसमय प्रवचनों तथा सभी साधर्मीजनों द्वारा सामूहिक पूजन, जिनेन्द्र भक्ति, रथयात्रा आदि कार्यक्रम हुआ। प्रमुख श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल।

मद्रास—तारीख १९ से तारीख ३०-९-६६ तक पर्यूषण पर्व बड़े उल्लास से मनाया गया। तारीख २५-९-६६ जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा, दस उपवास करनेवाले श्री चंदुलालभाई (विंछीया) का जुलूसपूर्वक सम्मान किया गया था। प्रवचनों में पूज्य स्वामीजी के परमोपकार याद करते थे। —कांतिलाल कामदार

नैरोबी (अफ्रीका)—यहाँ स्वाध्याय मंदिर में दस लक्षण पर्व बड़े उत्साह से मनाया गया। सवेरे, दोपहर, शाम तथा रात्रि को सभी सभ्यों ने सपरिवार पूर्ण प्रेम से भाग लिये प्रत्येक साधर्मी के भावों में भारी उमंग और प्रसन्नता थी, मानो साक्षात् हम सोनगढ़ सुवर्णपुरी में हैं। मात्र यहाँ साक्षात् स्वामीजी ही नहीं थे, उतनी कमी थी-हम परोपकारी पूज्य गुरुदेव का अत्यंत उपकार मानते हैं। —जवेरचंद पूनमचंद शाह, सेक्रेटरी

मोंबासा—श्री भगवानजीभाई तथा देवशीभाई का भी दसलक्षण पर्व मनाने का पत्र है। उसीप्रकार मौसी तथा एडन से भी शुभ समाचार पूर्वक पूज्य स्वामीजी के परमोपकार मानने के पत्र हैं।

दमोह—आमंत्रण द्वारा कोटा निवासी पंडित घासीलालजी पधारे थे, पर्व बड़े उत्साह और सभी धार्मिक कार्यक्रम में बड़ी प्रसन्नता सहित सम्पन्न हुआ। पंडितजी प्रश्न के उत्तर शांति से सप्रमाण देते थे, इसप्रकार पर्व में अतीव आनंद आया। पूज्य स्वामीजी व दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के द्वारा बड़ा भारी पवित्र उपकार हो रहा है। हम आभार मानते हैं। अमृतलाल जैन

सागर—यहाँ विद्वानों की संख्या विशेष है। शास्त्र प्रवचन कई मंदिरों में होता था चोधरनबाई के मंदिर में श्री सिद्धचक्र मंडल विधान मांडकर विशेष भक्तिभाव से पूजन के विधि विधान, पंडित माणेकचंदजी न्यायतीर्थ द्वारा कराई गई। रात्रि को पंडित श्री ताराचंदजी द्वारा समयसारजी ४७ शक्तियों आत्मप्रसिद्धि पुस्तक में से तथा पद्मनंदी पर प्रश्नोत्तर होता था, सभी मंदिरों में विद्वान प्रवचन करते थे। श्री पंडित मुन्नालालजी रांधेलीय न्यायतीर्थ कटरा मंदिर, पंडित दयाचन्द्रजी न्यायतीर्थ सिद्धांतशास्त्री मोराजी मंदिर, श्री बाल ब्र० विमलादेवी चैत्यालय में, श्री पंडित धर्मचंदजी साहित्य शास्त्री स्टेशन के मंदिरजी में, पंडित श्री दयाचंदजी सिद्धांत शास्त्री के प्रवचन में सोनगढ़ साहित्य की चर्चा आई तो उन्होंने स्पष्ट बताया कि दिगम्बर जैनाचार्यों के द्वारा प्रणीत शास्त्रों का सोनगढ़ से प्रकाशित होने के कारण उन साहित्य को सोनगढ़ साहित्य के नाम पर बदनाम करना जिनवाणी का अवर्णवाद (दर्शन-मोहनीय के आस्रव का कारण) है, इत्यादि चर्चा में पंडित दयाचंदजी सिद्धांतशास्त्री वीतरागभाव से समाधान करते थे। धर्म जिज्ञासु समाज से अब काफी जागृति हो रही है। यह सब पूज्य श्री स्वामीजी का ही प्रभाव है। उनके चरणों में हमारा विनयपूर्वक नमस्कार।

—विनीत सिंघई डालचंद जैन

चिखली—(दक्षिण महाराष्ट्र) हमारे आमंत्रण से पंडित रमेशचंदजी जैन को टेपरील रेकोर्डिंग तीर्थयात्रा की फिल्म आदि सहित भेजकर यहाँ के जैन समाज को भारी उपकृत किया। समाज ने प्रवचनों का पूर्णतया लाभ लिया, गलत फहमीवश सच्ची मान्यता का जो विरोध व संशय था, वह दूर हो गया। पूज्य स्वामीजी को कोटि-कोटि वंदना।

—दिगम्बर जैन समाज, चिखली

ढसाला—चिखली के पश्चात् प्रचारक श्री रमेशचंदजी ढसाला गये। वहाँ से पूर्व लिखे माफिक खुशी मनान के समाचार हैं। वहाँ से नांदुरा, चांदूर, मलकापुर, दताला, लालबाग आदि होकर इंदौर, उज्जैन, महिदपुर, मंदसौर बडनगर, नारायणगढ़, मनाशा, जावद, कोटा, पिडावा, नसीराबाद, अजमेर, मदनगंज (किशनगढ़), जयपुर, जलवर, एत्मादपुर दोसा टाउन तक का कार्यक्रम हैं।

मल्हारगढ़ (जिला मंदसौर)— श्री जेठमलजी जैन बंधु आमंत्रण द्वारा पधारे थे। पूज्य कानजीस्वामी की कृपा से धार्मिक प्रवचनों का उत्तम लाभ मिला और अपूर्व जैन सिद्धांत का

सच्चा अभ्यास कराया, अनादिकालीन भूल मिटाकर शीघ्र निर्मल तत्त्वज्ञान समझाया, हमें परम संतोष हुआ। —कस्तूरचंद अग्रवाल, दिगम्बर जैन समाज द्वारा

मैनपुरी (उ०प्र०)—पंडित रतनलालजी शास्त्री विदिशा के पधारने से जो अपूर्व तत्त्वज्ञानमय धर्म साधन हो रहा है, वह अवर्णनीय है, १० दिन तक हमें जो धार्मिक कार्यक्रम में आनंद आया है, वह वचन से नहीं बतला सकते। —विजयकुमार जैन

राघौगढ़ (म०प्र०)—आमंत्रण द्वारा इंदौर से श्री प्रकाशचंदजी पांड्या पधारे उनके द्वारा अच्छी धर्म प्रभावना हुई, शंका-समाधान मोक्षमार्गप्रकाशक, सूत्रजी, श्रावकाचार, दस लक्षण धर्म पर बड़े रोचक ढंग से प्रवचन होता था। जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भी पढ़ाई जाती थी। अंत में जिनेन्द्र रथयात्रा-जिनवाणी पूजन आदि कार्यक्रम था। पंडितजी की तार्किक बुद्धि और निर्मल तत्त्वज्ञान देखकर पूज्य स्वामीजी का सभी ने परमोपकार माना। पंडितजी के प्रवचन में-गुना, अशोकनगर, कुमहरड़ा, आरोन आदि स्थानों से खास जिज्ञासु बहुत संख्या में लाभ लेने हेतु मेहमान आये थे—यह विशेषता थी। —सुशीलचंद जैन

धार—ब्रह्मचारी श्री पंउित झमकलालजी शास्त्री को दस लक्षण पर्व के लिये हमारे समस्त दिगम्बर जैन पंचान की विनती से भेजा, आभार। हम लोग बड़े अंधकार में थे। सर्वज्ञ वीतराग कथित मार्ग का श्री स्वामीजी द्वारा प्रकाश हुआ। जिससे पंडितजी द्वारा प्रवचनों से और शंका समाधान से बड़ा ही आनंद प्राप्त हुआ है, बच्चे भी सरलता से समझ सके ऐसी रोचक शैली है, भगवान की पूजा-भक्ति आदि सब सामूहिक कार्यक्रम में नया उत्साह का संचार हुआ है। —केसरीमल सेनापती-आदि...

कलकत्ता—श्री पंडित फूलचंजी सि०आ०सि० शास्त्री द्वारा १३ दिन आध्यात्मिक रसमय प्रवचन हुआ, सभी श्रोताओं को बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ, संख्या बढ़ती होती चली, शंका समाधान द्वारा सबके समाधान होते थे, पर्यूषण पर्व बहुत ही आनंद सहित मनाये गये।

—मनोहरलाल पाटनी, ब्रजलाल खारा

बीना—दिगम्बर जैन समाज बीना बजरिया, आपका बड़ा आभार मानती है जो हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर पंडित धन्नालालजी (लश्कर निवासी) को भेजा। पंडितजी ने संयमी जीवन और अपने शुद्ध ज्ञानपुंज की किरण से हमारी अभी तक की मिथ्यात्व परम्परा को किसप्रकार से परिवर्तित कर दिया है, हम व्यक्त नहीं कर पाते। पंडितजी में लाक्षणिक

सावधानी और धैर्य सहित भाषा शैली होने से आपने वैज्ञानिक ढंग से ऐसी बातें कही जो आज के युवक वर्ग भी प्रतिदिन आने लगे। पंडितजी हमेशा चार घंटे समय देते थे, आपकी अद्वितीय प्रतिभा से परिचित धर्म जिज्ञासु लोग आपका नाम सुनते ही बाहर गाँव से आकर प्रवचनों का लाभ लेते थे।

विदाई समारोह बड़े ही अपूर्व ढंग से मनाया, सम्मानपत्र भेंट किया, यहाँ पंडित धन्नालालजी की अध्यक्षता में एक स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई।

अध्यक्ष, लक्ष्मीचंद (बी.कॉम.)
श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मंदिर बजरिया-बीना

भोपाल—यह पुनीत पर्व ब्र० राजारामजी द्वारा बहुत ही प्रभावशाली रूप में सम्पन्न हुआ। समाज के सभी बन्धु-महिलाओं ने समस्त कार्यक्रमों में व धार्मिक क्रियाओं में विशेष उत्साह प्रगट किया। मुमुक्षु मंडल की ओर से सवेरे रात्रि को शास्त्र प्रवचन में श्री राजमलजी (बी.कॉम.) ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में प्रयोजनभूत सात तत्त्वों के संबंध में भूलों का मार्मिकरूप से विवेचन किया, रात्रि में श्री राजमलजी पवैया द्वारा प्रवचन होते थे।

—रतनलाल सोगानी, मंत्री श्री भोपाल मुमुक्षु मंडल

दिल्ली—श्री चिमनलालजी द्वारा यहाँ १० दिन तक दोपहर और रात्रि को वैद्यपाड़ा मंदिरजी में प्रवचन-शंका समाधान तथा जैन सिद्धांत प्रवेशिका में से पढ़ाई, सामूहिक भक्ति पूजा आदि कार्यक्रम होता था, प्रवचन में श्रोताओं की संख्या ३५० से ४०० तक रहती थी। सब भाई बड़े प्रसन्न चित्त से सुनते थे, कई लोग अपना भ्रम छोड़कर नये धर्म जिज्ञासु बने। मोक्षमार्गप्रकाशक, दसलक्षण धर्म तथा परमात्मप्रकाशक शास्त्र पर प्रवचन होते थे, अनंत चतुर्दशी के दिन श्री परसादीलालजी पाटनी द्वारा श्री चिमनभाई को सम्मान पत्र दिया गया और बहुत खुशी मनाकर आपने कहा कि—हमको यह बात सुनने में भी बड़ा आनंद आता है, सुखी होने का उपाय यह ही है, कोई दूसरे उपाय से सच्चे आनंद की प्राप्ति नहीं हो सकेगी; परपदार्थ लाभ-नुकसान दाता नहीं है, शुभराग की क्रिया से या जड़ की क्रिया से कभी आत्मिक धर्म होनेवाला नहीं है। अंत में पूज्य स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। —श्रीपाल जैन

बागीदौरा—तारीख ३-१०-६६ समस्त दिगम्बर जैन समाज बागीदौरा का जय जिनेन्द्र। आपने इस पर्व पर पंडित श्री नेमीचंदजी (रखियाल-गुजरात) को भेजे-बड़ा उपकार

हुआ, अति सुंदर प्रभावना हुई। पूजा-भक्ति, प्रवचन, जैन शिक्षण कक्षाएँ, शंका-समाधान आदि का कार्यक्रम बड़े उत्साह से चला।

श्री नेमीचंदजी के दृष्टांत सहित सिद्धांतमय भाव भीगे उपदेश हमारे आत्मोन्नति के प्रतीक हैं, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, छह जाति के द्रव्य, छह सामान्यगुण, छह कारक, चार अभाव, सात तत्त्व, हेय-उपादेय इन विषयों पर उदाहरण सहित प्रवचन तथा पढ़ाई॰ उसमें समझाने की शैली बहुत प्रभावशालिनी थी। हमारे समाज में अपूर्व जागृति का श्रेय श्री नेमीचंदजी का और सबसे बड़ा उपकार पूज्य कानजीस्वामी का है।

त्यागधर्म के दिन पंडितजी ने निश्चय-व्यवहार त्याग आदि धर्मों का स्वयप समझाया समाज को बड़ा भारी धर्म प्रेम उमड़ आया, पंडितजी द्वारा निम्नोक्त प्रस्ताव रखे गये (१) जिनमंदिर का जीर्णोद्धार, जिनप्रतिमाजी लाना, जीर्णोद्धार के लिये दस हजार तथा प्रतिमाजी लाने के लिये चार हजार रुपये तुरंत एकत्रित हो गये। क्षमावाणी पर्व को रथयात्रा का जुलूस निकाला गया, भक्ति भजन की धुन सहित बड़ा उत्साह था जो देखते बनता था। पश्चात् दो मील पर 'नोगाँवा' पर बड़ा विशाल प्राचीन जिनमंदिर है, वहाँ दर्शन के बाद एक घंटा पंडितजी का प्रवचन हुआ। भादवा वदी ३ को बागीदौरा से २५ साधर्मी के साथ पंडितजी अतिशय क्षेत्र श्री अन्देश्वर पार्श्वनाथजी के दर्शनार्थ गये, घनघोर जंगल है, स्थान प्राकृतिक दृष्टि से बहुत उत्तम है। एक दिन सब ठहरे भक्ति, पूजन, तत्त्वचर्चा में बड़ा आनंद हुआ।

समस्त दिगम्बर दशा हुमड जैन समाज, बागीदौरा (बांसवाड़ा, राज०)

उदयपुर—१०-९-६६ जयपुर से लौटते हुए उदयपुर मुमुक्षु मंउल की प्रार्थना से श्री बाबूभाई तारीख ४-१०-६६ को यहाँ पधारे। स्टेशन पर समाज के विशेष व्यक्तियों के द्वारा भव्य स्वागत, प्रात:काल श्री उदासीनाश्रम में पूजन विधि, दिन में अग्रवाल मंदिरजी में तत्त्वचर्चा-प्रवचन, सायंकाल श्री महावीर दिगम्बर जैन चैत्यालय में भक्ति, रात्रि को श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन विद्यालय में प्रवचन हुआ। सभी कार्यक्रम में समाज ने काफी संख्या में भाग लिया। प्रवचनों में जनता मंत्रमुग्ध सी हो बड़ी प्रसन्नता से सुनती रही, श्रोताओं ने निश्चय व्यवहार धर्म के विश्लेषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तारीख ५-१०-६६ जिनेन्द्र की रथयात्रा की शोभा में-भजन नृत्य-भक्ति के द्वारा आपने जैनधर्म की प्रभावना को बढ़ाने में योग दिया, जिसके लिये समाज आपकी मंडली का बहुत आभारी है। गंगावत भवन में एक सम्मान समारोह कर मंडली को विदाई दी गई।

—सुंदरलाल जैन

खंडवा (म०प्र०)—तारीख ९-१०-६६ दिगम्बर जैन समाज के निवेदन से पर्यूषण पर्व में पंडित प्रकाशचंद्रजी शास्त्री देहली पधारे। यहाँ सबको अत्यानंद हुआ, हम सब समाज दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट की अत्यंत आभारी हैं। पंडितजी ने जैन तत्त्वज्ञान में प्रयोजनभूत विषयों पर भी प्रवचन दिये, कठिन-गूढ़ प्रश्नों को सरल दृष्टांतों द्वारा अति स्पष्ट करके इस तरह समझाया कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्ध तथा युवक वर्ग जिसने शास्त्र स्वाध्याय किया है तथा नहीं किया है—समझ में आ गया। आपके प्रवचनों में ऐसा आकर्षण था कि लोगों में रुचि-जिज्ञासा हुई और बढ़ी। पंडितजी ने अनुभवज्ञानरूपी प्रकाश से समाज के अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने का पूर्ण और सफल प्रयत्न किया। पंडितजी को चारों अनुयोगों का पूर्ण ज्ञान होने से विषय को बहुत उत्तम ढंग से प्रतिपादन करते थे। आपका संयमी जीवन, प्रतिदिन नियमानुसार श्रावक धर्म का आचरण देखकर भी समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा। ऐसे उच्च कोटि के अनुभवी, चारित्रवान, निस्पृही विद्वानों को भेजकर समाज पर आपने भारी उपकार किया है, उसके लिये समाज आपकी अत्यंत आभारी है।

जुगमंदरलाल जैन, वकील, मंत्री जैन समाज खंडवा

दयाचंदसा, बालचंदसा आदि....

अहमदाबाद—हमारी प्रार्थना के अनुसार राजकोट से आपने पंडित श्री देवशीभाई को दसलक्षणी पर्व पर भेजा। अत: सब समाज को अति हर्ष और धर्म प्रभावना का कारण हुआ। १५ दिन ठहर कर हमेशा शास्त्रसभा, तत्त्वचर्चा, भक्ति, समूह पूजन, दिन में तथा रात्रि को दो घंटा जैन शिक्षण तथा प्रवचन, संध्या को आरती-प्रतिक्रमण आदि सुंदर कार्यक्रम था। जैन जैनेत्तर बंधुओं ने भी बड़ी संख्या में लाभ लिया। पूज्य स्वामीजी के प्रभाव से भाई श्री देवशीभाई ने अध्यात्मतत्त्व के सूक्ष्म न्यायों-गूढ़ सिद्धांत तथा प्राचीन जैनाचार्यों कथित तत्त्वज्ञान को बहुत स्पष्टता से, अनेक पहलुओं से दृढ़ता सहित बतलाया। श्रोताओं को अपूर्व लाभ हुआ, प्रवचन शैली गंभीर-आकर्षक होने से श्रोतागण प्रसननता से व एकाग्रचित्त से सुनते थे, प्रश्नोत्तर में प्रत्येक को संतोष होता था, हम प्रार्थना करते हैं कि अहमदाबाद जैसे बड़े शहर में विशेष धर्म प्रभावना हेतु ऐसे अनुभवी विद्वान वक्ता को अवसर पर भेजते रहें।

चुनीलाल दोशी, मानद मंत्री, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

ठि० खाडिया-पोस्ट ओफिस के सामने अहमदाबाद।

इंदौर—पूज्य स्वामीजी का महान उपकार है जो इस साल यहाँ अशोकनगर निवासी पंडित हुकमचंदजी शास्त्री पधारे हैं जो बड़ी योग्यता प्राप्त वक्ता हमको मिल जाने से दसलक्षण पर्व में समाज को बड़ा आनंद आया, प्रत्येक धार्मिक कार्यक्रम में उन्हीं के द्वारा बड़ा उत्साह आनंद रहा-हम अत्यंत आभारी हैं। —पूनमचंद छाबड़ा

महिदपुर (म०प्र०)—हमारे मंडल की प्रार्थना से आपने पंडित गोविंददासजी को भेजा समाज को इस पर्यूषण पर्व में बड़ा भारी आनंद-उत्साह आया। हम आप सभी का तथा पूज्य स्वामीजी का विशेष उपकार मानते हैं। सागरमल जैन-शांतिलाल सोगानी

मलकापुर—हमारे आमंत्रण से ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी तथा ब्रह्मचारी श्री दुलीचंदजी महाराज पधारने से यहाँ पर्वराज विशेष उत्साहमय अनेक विध कार्यक्रम सहित मनाया गया, जैन-जैनेत्तर सब समाज ने लाभ लिया। अत: हम सोनगढ़ दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के अत्यंत आभारी हैं। —नेमीचंद जैन

विशेष—गुना, अशोकनगर, लश्कर, ललितपुर, भिण्ड, भिण्डर, उज्जैन, विदिशा, पिड़ावा, नारायणगढ़, जावद, पालेज, फतेहपुर, सुरेन्द्रनगर, जोरावरनगर, वढ़वाण, लींबड़ी, रखीयाल, दहेगाम, खैरागढ़, राणपुर, वींछिया, चोटीला, बोटा, जसदण, भावनगर, लाठी, कलापीनगर, सावर कुंडला, वडिया, जेतपुर, गोंडल, राजकोट, पोरबंदर, जामनगर, मोरबी, वांकानेर, रंगुन, आदि कई गाँवों से उत्साह सहित पर्वराज सानंद सम्पन्न के समाचार हैं।

—गुलाबचंद जैन

धर्म प्रभावना के विशेष समाचार

जयपुर—तारीख ६-१०-६६ दसलक्षणपर्व पर श्री बाबूभाई (फतेपुर निवासी) द्वारा धर्म प्रभावना बहुत जोरदार हुई, साथ में हिम्मतनगर, सलाल, फतेपुर आदि गाँवों से अग्रणी मुमुक्षु जन भी ४० करीब पधारे थे।

तारीख १८-८-६६ श्री बाबूभाई पधारे तब स्टेशन पर समाज के प्रमुख व्यक्ति करीब २०० मौजूद थे, स्वागत हुआ, जुलूस निकाला गया; जिनमंदिर में पहुँचकर मंगल, नमस्कार आदि हुए। हमेशा प्रवचन बड़े मंदिरजी में होता था, इतनी भीड़ लगी रहती थी कि रास्ते में भी श्रोतागण खड़े-खड़े सुनते थे। आदर्शनगर में भी धर्म जिज्ञासु बहुत हैं, वहाँ भी प्रवचन रखा

था, प्रश्न भी बहुत किया, सबको समाधान खूब हुआ–हरेक प्रवचनों में सुनने के लिये खास बड़ी संख्या थी।

अनंत चतुर्दशी को सामूहिक प्रतिक्रमण रखा गया जिससे लोग बहुत प्रभावित हुये। भजन–भक्ति रोज रात को रहती थी, लोगों को बहुत पसंद थी। फिर अनुरोधवश जुदे–जुदे मंदिरों में उसका आयोजन करना पड़ता था। सांगानेर, आमेर, पद्मपुर के जिनमंदिरों में दर्शन सामूहिक कराये गये। खानिया, चूलगिरि भी दर्शनार्थ गये थे, वहाँ भक्ति का कार्यक्रम रखा था। श्री टोडरमलजी स्मारक भवन की छत पर भी प्रवचन व भजन हुए।

विशेषता—रथयात्रा जुलूस में हाथी, घोड़े, ऊँट, बेन्डबाजे थे, भजन मंडलियाँ भी जोरदार थी। एक रथ में शास्त्रजी, एक रथ में.. कुन्दकुन्दाचार्य का बड़ा फोटो, एक रथ में श्रीजी भगवान विराजमान थे। हजारों की संख्या थी। बाजारों में, दुकानों पर, मकानों पर भी अति भीड़ सहित दर्शक लोग खड़े थे। दीवानजी के मंदिर में हमेशा रात्रि को पहले पंडित श्री चैनसुखदासजी का, पश्चात् श्री बाबूभाई का प्रवचन होता था। दोपहर में सेठी भवन हनुमानजी का रास्ता पर, शंका समाधान का समय रखा था। शिक्षण शिविर बड़े मंदिरजी में था जिसमें ४००–५०० स्त्रियाँ और पुरुष हमेशा आते थे।

विदाई समारोह

सेठी भवन के रास्ते में स्त्री, पुरुष खचाखच भर गये थे, उस समय समाज के खास लोगों को बोलने का थोड़ा–थोड़ा समय दिया था, सबने अपने–अपने भाव व्यक्त किये जिससे पता लगता था कि लोगों में कितनी जागृति हुई, कितनी भावना है यह सुंदर रहा। सबने पुष्प हारों से स्वागत कर बाजे सहित विदा किया। इस तरह जयपुर में खूब प्रभावना हुई, अपूर्व तत्त्वज्ञान समझने की जिज्ञासा हुई, कईयों को गलत धारणा थी उनको स्पष्टरूप से यह लगा कि सोनगढ़वाले सर्वा वीतराग कथित निश्चय–व्यवहार का यथार्थ स्वरूप कह रहे हैं। बाबूभाई, सोनगढ़ की संस्था व खास परमोपकारी पूज्य स्वामीजी के हम सब लोग अत्यंत आभारी हैं, जो हमारी विनती स्वीकार कर श्री बाबूभाई को जयपुर भेजा। भविष्य में भी विद्वानों को भेजकर धर्म का मार्ग दर्शन करें।

दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल की तरफ से
महेन्द्रकुमार सेठी

दसलक्षण पर्व समारोह का भव्य आयोजन

जयपुर—इस साल भी राजस्थान की प्रतिनिधि जैन संस्था 'रा० जैन सभा' द्वारा १० दिन के विस्तृत कार्यक्रम में—पंडित चैनसुखदासजी के दस लक्षण धर्म पर नियमितरूप से प्रवचन प्रारंभ होकर सौराष्ट्र-गुजरात के प्रमुख प्रवक्ता श्री बाबूभाई के प्रवचनों का आयोजन किया गया। प्रतिदिन राज्य मान्य कवि श्री तारादत्त 'निर्विरोध' एवं प्रसन्नकुमार सेठी द्वारा धार्मिक विषयों पर कविता पाठ हुआ। इन सबके अतिरिक्त कार्यक्रम में आम जनता को लाभान्वित करने की दृष्टि से विविध धार्मिक विषयों पर अधिकारी विद्वानों के भाषणों का आयोजन था उसमें जैनधर्म, साहित्य एवं उसके पौराणिक महत्व पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए इस घ्भाषण माला में 'हिन्दी को जैन साहित्यकारों का योगदान' विषय पर हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रवक्ता डा० मदनगोपाल शर्मा, 'धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म' पर जयपुर नगर परिषद के अध्यक्ष डा० मथुराललला शर्मा, 'भौतिकवाद और धर्म' पर श्रीपतराय बज, प्राध्यापक ला कोलेज, 'जैन ग्रंथ और ग्रंथकारों की भूमि' पर डा० कस्तूरचंद काशलीवाल, 'पर्यूषण पर्व का महत्व' पर श्री केवलचंद्र ठोलिया, 'अपरिग्रहवाद बनाम समाजवाद' पर श्री मोहनलाल रावका, 'जैन साहित्य में शांतरस' पर डा० नरेन्द्र भानावत, प्राध्यापक रा० विश्वविद्यालय, 'राजस्थानी जैन साहित्य का महत्व और मूल्यांकन' पर डा० हीरालाल महेश्वरी प्राध्यापक रा० विश्वविद्यालय तथा 'भौतिकवादी युग में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता' पर खंडेलवाल हाईस्कूल के प्राध्यापक एवं प्रमुख समाजसेवी श्री माणिकचन्द्र जैन के सारगर्भित भाषण हुए। उन सब विद्वानों ने इस बात पर बल दिया कि जैन साहित्य का संरक्षण एवं जैन समाज के अतिरिक्त जैनेतर समाज में इसका प्रसार अत्यावश्यक है। जैन साहित्य समूचे भारत की निधि है तथा इसका संरक्षण एवं इसकी उपयोगिता का सही मूल्यांकन हमारा नैतिक दायित्व है।

क्षमावाणी पर्व का अनुपम महत्व

क्षमावाणी पर्व भाद्र सुदी १५ के बाद बदी १ को हरसाल सब जगह मनाया जाता है। इस साल इस आयोजन की अध्यक्षता राज्य के यातायात एवं विद्युत मंत्री श्री चंदनमल वैद्य ने की थी, पंडित श्री चैनसुखदासजी एवं श्री बाबूभाई के 'क्षमा०' पर्व के महत्त्व एवं

आवश्यकता पर प्रवचन हुआ। श्री चंदनमलजी ने इस आयोजन की सफलता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि—ऐसा कोई पर्व दुनियाँ के इतिहास में नहीं मिलेगा, जिस दिन मानव क्षमा-याचना करता है, जैनधर्म के इस महान पर्व का कोई मुकाबला नहीं किया जा सकता। बल देते हुए खासतौर से कहा कि—सामूहिकरूप से इस क्षमावाणी पर्व को-विशेष शानदार बनाने के लिये सभी संप्रदाय के जैन मिलकर प्रत्येक गाँव में—खास प्रेम से मनाने का प्रयत्न करना चाहिये। आपने इस बात पर और जोर दिया कि यदि पर्यूषण पर्व एक साथ और निश्चित अवधि में मनाया जाना संभव न हो तो **यह क्षमावाणी पर्व तो एक साथ एक ही दिन हर साल मनाया जाना चाहिये। मनाने का अनुरोध कीजिये। यदि यह सम्भव हो जाये तो निश्चय ही जैन समाज का गौरव बढ़ेगा।** अंत में राज० जैन सभा के अध्यक्ष श्री केशवलाल अजमेरा जैन तथा मंत्रीजी ने इस सुझाव को कार्यान्वित करने का आश्वासन दिया। और इस पवित्र समारोह की सफलता में जन सहयोग की सराहना करते हुए धन्यवाद दिया।

प्रकाशचंद पाटनी
संयुक्त मंत्री

नया प्रकाशन

श्रीमत्भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

श्री नियमसारजी शास्त्र (दूसरी आवृत्ति)

सर्वज्ञ वीतराग कथित महान आध्यात्मिक भागवत् शास्त्र, ११ वीं शती के अध्यात्मरस के सर्वोत्तम कवि शिरोमणि श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिवरकृत संस्कृत टीका तथा अक्षरशः प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद सहित शास्त्र जिसकी तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा काफी जोरों से मांग है, पूर्णरूप से संशोधित, यह ग्रंथ महान, अनुपम, पवित्र तत्त्वज्ञान की अपूर्व निधि समान है। पृष्ठ संख्या ४१५, बड़ी साइज में, रेगजीन कपड़े की सुन्दरतम जिल्द मूल्य बहुत कम कर दिया है। मात्र ४/- पोस्टेजादि अलग। देश-विदेश में, कोलेज-विश्वविद्यालयों में-सर्वत्र सुंदर प्रचार के योग्य अत्यंत सुगम और सब प्रकार से सुंदर ग्रंथ है। जिज्ञासुगण शीघ्र ओर्डर भेजें।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५–०
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४–०
श्री नियमसार शास्त्र	४–०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३–५०
समयसार प्रवचन, भाग १–२–३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४–०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	४–०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ–९००	५–०
स्वयंभू स्तोत्र	०–५०
मुक्ति का मार्ग	०–५०
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१–०
'' ''द्वितीय भाग	२–०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १–२–३	०–६०
योगसार–निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०–१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०–३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१–०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०–७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६–०
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१–५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में

[डाकव्यय अतिरिक्त]

जैन बाल पोथी	०–२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०–१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	१–०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	प्रेस में
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१–८५
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१–४५
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा. प्रेस में	
भेदविज्ञानसार	२–०
अध्यात्मपाठ संग्रह	४–०
वैराग्य पाठ संग्रह	१–०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०–१५
स्तोत्रत्रयी	०–५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०–२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२–०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३–७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०–१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१–०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में ग्रन्थ का मात्र	१८) ६–०
अभिनंदन ग्रंथ	७–०

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।